# आपन गंउवा

www.vithika.org

# वीथिका

वीथिका ई पत्रिका

अंक 02| जुलाई

# संपादक मंडल


**अर्चना उपाध्याय**
प्रधान संपादक

**चित्रा मोहन**
मुख्य सलाहकार संपादक

**सुमित उपाध्याय**
प्रबंध संपादक

वीथिका परिवार

श्री मनोज कुमार सिंह

श्री अविनाश पाण्डेय

डॉ अखिलेश पाण्डेय

जय श्री

डॉ शिवमूरत यादव

उज्जवल उपाध्याय

अश्विनी तिवारी

अर्चिता उपाध्याय

रजनीकांत तिवारी

**कार्टूनिस्ट -**
**श्रीमती कृतिका सिंह**
**कवर फोटो आभार : चन्द्रेश वर्मा**

www.vithika.org

वीथिका ई -पत्रिका

## संपादकीय समिति

डॉ मोहम्मद ज़ियाउल्लाह

डॉ धनञ्जय शर्मा

डॉ सुधांशु लाल

एड. सत्यप्रकाश सिंह

विनोद कोष्टी

श्री नन्दलाल शर्मा

**ग्राफिक व कला संपादक**
**पूजा मद्धेशिया**

**संरक्षक**
**यशिका फाउंडेशन, मऊ**

**UDYAM-UP 55 0010534**

**vithikaportal@gmail.com**

# आपकी गलियां

अंक 02

जुलाई 2023

अपनी बात 04

लोक जीवन और साहित्य 05

लोक में बसा गाँव या गाँव में छिपा लोक 07

कबहीं त लवटीहें मोर बनिजरवा 10

बुंदेलखंड की लोकनाट्य कलाएं 12

हम याद बहुत आयेंगे 15

हिंदी या इन्दी 19

हम, हमारी पहचान व हमारी समझ 20

यमुनोत्री 22

दी ग्लोबल ब्रेन : वेब 3.0 23

हांड़ी की कलौंजी 25

सोंधी मिट्टी 26

कहानी - फागू का फगुआ 28

# अपनी बात

भारत मूलतः गाँवों का देश है, जिसकी अस्सी से नब्बे प्रतिशत तक की जनता गाँवों में रहती थी लेकिन बाद के समय में जैसे-जैसे आधुनिकता बढ़ी गाँवों से शहरों की तरफ पलायन हुआ। इस पलायन में लोक-संस्कृति, रीति-रिवाज़, परम्पराओं, मान्यताओं आदि का भी स्थानांतरण हुआ जो बाद में आस्थाओं की परम्परागत शैली से हट कर आधुनिकता में परिवर्तित हो गया।

कृषि कार्य की अधिकता के कारण जब पुरुष घर से बाहर दिन-रात रहता था तो उसकी मनःस्थिति चईता व चैती के माध्यम से व्यक्त हुई। खुशी एवं उल्लास फगुआ के माध्यम से बाहर निकला, राम का रावण पर विजय दशहरा व दीपावली के माध्यम से व्यक्त हुआ। इन सब के पीछे आस्था के साथ-साथ उसके घर में आये धन की खुशी भी थी। एकादशी के दिन गन्ना आदि नए अन्न के प्रयोग की परम्परा बनी। ख़ुशी के अवसरों पर गाँव के डीह बाबा, ब्रह्मबाबा के साथ-साथ कुल देवता एवं देवी पूजने की परम्परा थी जो आज भी गाँवों में उसी रूप में विद्यमान है लेकिन शहरों में उसे प्रतीकात्मक रूप से निभाया जा रहा है। शादी-विवाह के अवसर पर जनवासे एवं बड़हार आदि की परम्परा थी इसका मूल उद्देश्य था नये सम्बन्धियों का पुराने सम्बन्धियों से परिचय जो आज पूर्णतः समाप्त हो गया है। इस प्रकार बहुत से रीति-रिवाज़ थे जो हमारी सामाजिकता के लिए आवश्यक थे जिनका लोप इस आधुनिकता के दौर में हो गया है।

कहने का आशय यह है कि हम आधुनिक बनें लेकिन साथ ही साथ अपने आधार से भी जुड़े रहें। हम वायुयान से अवश्य चलें लेकिन बैलगाड़ी के महत्व को भी याद रखें। आपकी वीथिका का यह अंक गाँवों की उन्हीं बतकहियों, स्मृतियों, गीतों, कथाओं के साथ आपके समक्ष है।

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

**www.vithika.org**

# लोकजीवन और साहित्य

दयाशंकर तिवारी
मऊ, उत्तरप्रदेश
(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं, लोक साहित्य में आपके 4 काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं)

भारतीय संस्कृति में लोक जीवन और लोक साहित्य का चोली-दामन का साथ है । कम पढ़े-लिखे व्यक्ति भी लोकगीतों का सृजन कर सुमधुर कण्ठ से गाते हैं और अपना तथा लोगों का मनोरंजन करते हैं। हमारे यहाँ परम्परागत गीतों का बहुत महत्व है जो अक्सर मौसम के साथ जुड़े हुए हैं । कृषि-मजदूर गीत गाते हुए श्रम करते हैं जिससे उनको अपनी मेहनत का आभास नहीं होता है । साल में आने वाले हर त्यौहार और मौसम के साथ गीतों का सामन्जस्य आपस में मेल-जोल बढ़ाने का भी काम करता है जो मौसमी उत्सव के रूप में लोग मनाते भी हैं । फागुन में होली के गीत, बसंती गीत, चैत्र में चैता, सावन-भादो में कजरी के साथ-साथ रोपनी और सोहनी के गीतों से लोक साहित्य भरा पड़ा है ।

घरों में पहले महिलाएं जाता से आटा पीसते समय जो गीत गाती थीं उसे जतसार कहते थे । दिनभर के थके हारे लोग शाम को गाँव में चौपाल लगाते थे जिसमें आपस में मिलकर भजन-कीर्तन गाते थे । शादी-ब्याह में विविध मांगलिक गीतों से लोगों के मन उत्साह का संचार होता है ।भोर में भोर के गीतों और शाम में सांध्य गीतों का भी अलग महत्व है ।

लोकभाषा या बोली में जो लालित्य है वह कहीं और देखने को नहीं मिलता है । लोकभाषा अवधी में लिखा गया रामचरित मानस और ब्रजभाषा में लिखे गये छंद बहुत कर्णप्रिय होते हैं। भोजपुरी को भाषा का दर्जा अभी प्राप्त नहीं है लेकिन लोकवाणी के रूप में उसका जितना प्रचार-प्रसार है वह उसके महत्व को दर्शाता है । अब तो खड़ीं बोली के गीतों में भी भोजपुरी के शब्दों का प्रयोग लोगों के हृदय को छू लेता है । आम बोलचाल की भाषा और बोली क्षेत्रीय आधार पर कुछ बदलती रहती है लेकिन वह सबके समझ में आ जाती है । खड़ीं बोली में गीत लिखने वाले भी भोजपुरी गीतों के प्रशंसक हैं ।

कुल मिलाकर लोकजीवन और लोक साहित्य हमारा जीवन दर्शन है जो हमारे समाज में रचा-बसा है। जिससे लोगों में उत्साह का संचार होता है, लोगों के दुःख-दर्द को कम करने वाले लोक साहित्य का भविष्य उज्जवल है। हम अपनी माटी से जुड़े हुए हैं। खेत-खलिहान, बाग़-बगीचे, नदी-पोखरे और तालाब से जुड़ें रह कर ही लोक साहित्य का सृजन संभव है। श्रम-साध्य गीतों से लोगों का भरपूर मनोरंजन होता है। आगे और अधिक श्रम करने की प्रेरणा भी मिलती है। हम अपनी परम्पराओं का बखूबी निर्वहन करते हुए प्रफुल्लित भी होते हैं।
लोक साहित्य हमारी पहचान है, हमारी विरासत है जिसकी वजह से हम अपने अतीत को जीवित रखे हुए हैं। जब भी आदमी भटकता है तो उसका अतीत ही उसका मार्गदर्शन करता है। लोक साहित्य के बिना लोक जीवन अधूरा रह जाता है। प्रकृति से जुड़ कर लोक साहित्य और अधिक हृदयस्पर्शी हो जाता है।

हिंदी के एक मुक्तक से गाँव का चित्रण –

गाँव के तो लोग खुद होते वैद्य हकीम
आँगन में तुलसी जहाँ दरवाजे पर नीम ।
दूर भगाते रोग को जड़ से राम-रहीम
इसीलिए होते यहाँ बली अली औ भीम।

भोजपुरी के दो छंद निम्न हैं-

नीक लागेला हमके हमार गउंवा
बाटे गीता रमायन का सार गउंवा ।।

ले जहवाँ लगवलें ना दगवा
दमरी के सेनुरा आ रखिया के धगवा।
भइया बहिनी कऽ पसरल पिआर गउवाँ ।।

मेलजोल जहवाँ कऽ धरमे ईमान बा
गुनई सोबराती कऽ गीता कुरान बा।
सीमा सलमा कऽ सारी सलवार गउवाँ ।।

(संग्रह: नाहीं लउके डहरिया के छोर)

सावन के दो बंद इस प्रकार हैं –

रिमझिम बरसेला सवनवाँ में सँवरिया बदरा।
रस के गगरी चुआवेले बदरिया बदरा।
डर लागे अन्हियरिया में चमके चहुँओर बिजुरिया,
ओरियानी के पानी छींटा मारे सोझ दुवरिया।
खटिया मचिया भींजे तकिया मुड़वरिया बदरा,

अँगना लागे काई सम्हरि न पाई फिसले पउवाँ।
झुलुआ झूले कजरी गावें, मिलि के सगरी गउवाँ।
उफनलि पोखरी में उछलेंली मछरिया बदरा
रिमझिम बरसेला सवनवाँ में सँवरिया बदरा ।।

(काव्य संग्रह : माटी क महक)

# लोक में बसा गाँव या गाँव में छिपा लोक

डा. अपर्णा पान्डेय

प्रवक्ता हिन्दी

स्व. कुबेर सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय मिर्जापुर

गाँव को यदि लोक संस्कृति का मूर्त स्वरुप कहें तो अत्युक्ति न होगी । गाँव का आदमी निरक्षर भले हो लेकिन सुसंस्कृत रहा है वह विश्वास पर बिक जाता है, धर्म पर झुक जाता है, सबको सहता है पर शिकायत नहीं करता, सबकी सुनता है पर अपनी ओर से कुछ नहीं कहता, वह कभी थक कर नहीं बैठता, झुक कर नहीं चलता और त्याग में से प्राप्ति तथा परिश्रम से आनंद पाता है । दुःख का पहाड़ आ जाय या सुख की क्षीण रेखा वह सदा मुस्कुराता रहता है । गाँव का आदमी न जाने कब से बाट जोह रहा है कि कोई आये और उससे भी कुछ ले जाए उसका समग्र जीवन, जो एक अनपढ़ी खुली पुस्तक की तरह सामने बिछी है, उसका रहन-सहन, खान-पान, वस्त्राभूषण, आचार.-विचार, रीति-रिवाज, धर्म और आस्था, विश्वास और मान्यताएं, पर्व-उत्सव, मेले और तमाशे, गीत और कथाएं, नृत्य-संगीत और कलाएं, भाषा तथा बोलियों के प्रत्येक शब्द हमें कुछ न कुछ देने की क्षमता रखते हैं ।

लोक संस्कृति विशेषतया भोजपुरी लोक संस्कृति व साहित्य की वर्तमान दशा को जानने के लिए अतीत की यात्रा करना आवश्यक है । तभी हम उज्जवल भविष्य की संकल्पना कर सकते हैं। भारत में लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति के अध्ययन का प्रारम्भ दो प्रकार के व्यक्तियों ने किया । पहला अंग्रेज सिविलियन और दूसरा इसाई मिशनरी और इन दोनों को यह पूर्ण आभास था कि यदि इस देश में अपनी पैठ बनानी है तो इस देश के साहित्य सभ्यता तथा संस्कृति का अध्ययन करना आवश्यक है। इसीलिए सन् 1774ई0 में कलकत्ता सुप्रीमकोर्ट के जज सर विलियम जोन्स ने कलकत्ता में रॉयल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की।

लोक संस्कृति तथा साहित्य के अनुसंधान के वास्तविक श्रीगणेश का श्रेय जेम्स टॉड को प्राप्त है । जिन्होंने राजस्थान की लोकगाथा तथा कथाओं एवं जनश्रुतियों का संकलन कर उनके आधार पर अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ “एनाल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान” का निर्माण सन् 1829 में किया।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के भाषा शास्त्र के विद्वान डॉ सर जार्ज एब्राहिम ग्रियर्सन ने सन् 1884 में “सम बिहारी फोक सांग्स” तथा सन् 1886 ई0 में “सम भोजपुरी फोक सांग्स” शीर्षक के दो विस्तृत तथा प्रामाणिक लेखों को प्रकाशित किया, जिसमें भोजपुरी गीतों का मूल पाठ, उनका अंग्रेजी अनुवाद तथा टिप्पणियाँ दी गई हैं। यह भोजपुरी लोकगीतों का सर्वप्रथम संग्रह माना जाता है। सन् 1885 में इन्होंने “दि सांग ऑफ आल्हाज़ मैरेज” लेख इण्डियन एन्टीक्वेटी पत्रिका में छपवाया। इसी वर्ष इन्होंने “टू वर्शन्स ऑफ दि सॉग ऑफ गोपीचन्द” को संकलित किया। इस लेख में गोपीचन्द की गाथा की भोजपुरी तथा मराठी में उपलब्ध दोनों वाचनाएं दी गई हैं।

सन् 1889ई0 में जर्मनी की सुप्रसिद्ध पत्रिका जे.डी.एम.डी. में इन्होंने "नयकवा बनजारा" गीत छापा। इनके द्वारा लिखित बिहार पीजेण्ट लाइफ नामक ग्रन्थ भी अत्यन्त उपयोगी है, जिसमें ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित शब्दावली का प्रामाणिक संग्रह किया गया है।

विलियम क्रुक ने भी भारतीय लोक संस्कृति के क्षेत्र में प्रचुर योगदान किया है। सन् 1891 ई0 में इन्होंने "नार्थ इण्डियन नोट्स एण्ड क्वेरीज" नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिसमें लोक साहित्य सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री छपती थी। सन् 1893 ई0 में क्रुक ने "पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर ऑफ नार्दर्न इण्डिया" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ को दो भागों में प्रकाशित किया। जिसे सचमुच ही लोक संस्कृति के विश्वकोष की संज्ञा दी जा सकती है।

परंपरागत लोक साहित्य किसी एक व्यक्ति की रचना का परिणाम नहीं है। कई ऐसे प्रमाण देखने को मिलते हैं जहाँ एक ही गीत, कहावत या मुहावरा का क्षेत्र परिवर्तन के साथ स्वरूप परिवर्तन हो जाता है। इसका एक प्रमाण है लोक महाकाव्य-आल्हखंड जिसको आज तक एकरूपता नहीं प्राप्त हो सकी। इस कार्य में लोक प्रवृत्ति किसी प्रतिबन्ध को स्वीकार ही नहीं करती। लोक साहित्य में निहित सौन्दर्य का मूल्यांकन सर्वथा अनुभूतिजन्य है। आदिकाल से श्रुति व स्मृति के सहारे जीवित रहने वाले लोक साहित्य के कुछ विशेष सिद्धांत हैं। इस साहित्य में वे रचनाएं ही स्वीकृत होती हैं जो जीवन का अंग हों अथवा अनेक कंठों में अनेक रूपों में बन बिगड़कर एक सर्वमान्य रूप धारण कर लेती हैं । यह रचनाक्रम आदिकाल से अब तक जारी है। इसीलिए विद्वानों ने लोकसाहित्य को अपौरुषेय की संज्ञा दी है। स्फुट गीतों में तो केवल पंक्तियाँ ही इधर-उधर होती हैं लेकिन प्रबंध गीतों एवं कथाओं में घटनाएँ भी बदलती रहती हैं। यह सब होते हुए भी उन प्रबंधों एवं कथाओं के परिणामों में प्रायः कोई परिवर्तन स्वीकार नहीं किया जाता। रामकथा को ही लें, लोक रामायण ने अपनी अलग ही धरा बनायी है। इसीलिए तो कहते हैं, "नाना भांति राम अवतारा, रामायन सत कोटि अपारा।"

अलग.अलग क्षेत्रों के लोक साहित्य को जानने पर उनके कलेवर तो भिन्न होंगे, परन्तु उनकी आत्मा या भाव एक ही होता है।

क्षेत्रों व देशों की सीमा मनुष्य भले ही निर्धारित कर दे लेकिन लोक साहित्य इन वर्जनाओं से मुक्त है। हुआ यूँ होगा कि औपनिवेशिक काल में या उससे पहले या बाद में जब मानव एक स्थान से दूसरे स्थान पर गया तो वो अपनी लोक साहित्य की थाती अपने साथ लेकर गया, और उसका प्रभाव उस स्थान की संस्कृति पर पड़ा, जिसे वहाँ के लोगों ने स्वीकार कर लिया ।

आज हिन्दी प्रदेश में जो लोक साहित्य प्राप्त है, वह सदैव एक जैसा नहीं रहा होगा। मध्य युग के ऐतिहासिक लोकनायकों और वीरों की जो कहानियाँ आज प्रचलित हैं वे उनसे पूर्व नहीं रची गयी होंगी। भोज हम्मीर, रत्नसेन और पद्मावती आदि की कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। सन् 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह ने कुँवर सिंह के गीतों को जन्म दिया, आदिवासी विद्रोह के बाद बिरसा भगवान की कथाएँ और गीत छोटा नागपुर की विभिन्न भाषाओं के लोक साहित्य के अंग बन गए,और वे हमारी मौखिक परम्परा में सम्मिलित हो गए।

लोक साहित्य वास्तविकता का ही नहीं अपेक्षा का भी चित्रण करता है। वास्तविकता और अपेक्षा का द्वन्द्व संस्कृति के रचनातंत्र की एक बुनियादी विशेषता है और यह शायद कहावतों में सबसे अधिक प्रत्यक्षता से व्यक्त होता है। वास्तविक और अपेक्षित के द्वन्द्व के समानान्तर एक अन्य द्वन्द्व वास्तविक और इच्छित का है। इस दूसरे द्वन्द्व की अभिव्यक्ति लोक साहित्य को एक ओर अवदमित वासनाओं के विरेचन का माध्यम बनती है तो दूसरी तरफ सामूहिक इच्छापूर्ति का। हर लोक साहित्य में ऐसी सामग्री मिलती है जो प्रचलित सामाजिक आचारों और मान्यताओं के विपरीत पड़ती है। अभिप्राय यह है कि लोक साहित्य लोक के विश्वासों, अभिरूचियों और मूल्यों का अभियन्ता और इस प्रकार उसके आचरण का प्रभावक है। जैसे लोक गीतों के द्वारा स्थान विशेष का आर्थिक भूगोल पता चलता है। जैसे मगहिया पान, बनारसी साड़ी, मिर्जापुर का बना लोढ़ा इत्यादि से यह पता चलता है कि स्थान विशेष की विशिष्टता क्या है और साथ ही समृद्धि में उसका कितना हाथ है। जैसे विवाह में बारातियों के चढ़ने के लिए हाथी गोरखपुर से आता हैं और पटने से उसकी झूल आती है।

इसी प्रकार लोक गीतों व साहित्य में जन-जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र नहीं। सच तो यह है कि यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना अभीष्ट हो तो उसके लोक साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। समाज के यथातथ्य चित्रण के लिए लोक साहित्य का अनुसंधान वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है।

किसी जाति के धार्मिक जीवन का पता भी लोक साहित्य से चलता है। ग्रामीण जन किन-किन देवताओं की पूजा करते हैं, उनकी प्रसन्नता के लिए कौन-कौन से उपाय करते हैं तथा पूजा में जो विधि-विधान सम्पादित किए जाते हैं। उन सब का वर्णन यहाँ पाया जाता है। धार्मिक जीवन की झॉकी के अतिरिक्त हिन्दू पुराणशास्त्र के अनेक ज्ञातव्य विषयों पर इन गीतों से प्रचुर प्रकाश पड़ता है। लोक साहित्य में जिस नैतिक अवस्था का वर्णन मिलता है वह लोकोत्तर और दिव्य है। यह तो स्पष्ट ही है कि लोक जीवन परम्परा से उद्भूत रहा है, परन्तु क्या समय के साथ होते रहे परम्परागत, सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रभाव से साहित्य अछूता तो नहीं रहा और न ही हो सकता है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में बढ़ते बाज़ारवाद व तकनीकि संसाधनों के कारण हमारा ग्राम्य समाज भी आधुनिकीकरण के प्रभाव से अछूता नहीं रहाद्य जिससे परम्पराओं का ह्रास तो हुआ ही है। अब वो सही है या गलत ये अलग विचारणीय विषय है। परन्तु परम्पराओं के विलुप्त होने से कहीं न कहीं धीरे-धीरे साहित्य भी लुप्तप्राय हुआ। आज की पीढ़ी बहुत सारी परम्पराओं, रूढ़ियों व मान्यताओं से अनभिज्ञ है।

भोजपुरी साहित्य में गाँव का वह परिवेश देखा जा सकता है जो जो ग्राम और नगर समाज को अलगाता है। नगर समाज और आज का समय प्रकृति को परिचालित कर रहा है,लगभग उसे जीत चूका है जबकि ग्रामीण परिवेश में वह प्रकृति का सहचर बल्कि उसके प्रति सहज समर्पित रहा है प्रकृति के बिना हम गाँव की संकल्पना भी नहीं कर सकते। गाँव शब्द सुनते ही जो छवि मस्तिष्क में बनती है वह सहज व अकृत्रिम अवस्था में प्रकृति का दृश्य और सिर्फ प्रकृति ही नहीं अपितु जन भी अपने सहज सरल अवस्था में दिखाई देते हैं । वन की हलचल और चिड़िया के बोलने के साथ मनुष्य की दिनचर्या की शुरुआत सहज स्वाभाविक है ।सुबह के चित्र के साथ दोनों की संगति का सुखद जीवन क्रम आज भी समझाया जा सकता है, जिया भले न जा सके । आज का ग्रामीण परिवेश उस ग्रामीण परिवेश से बहुत भिन्न है जैसा कि पुरातन भोजपुरी साहित्य से समझ आता है । वैश्वीकरण के इस दौर में बाजारवाद का प्रभाव गाँव पर भी कम नहीं पड़ा है । इसीलिए आज के समय में यह और आवश्यक हो जाता है कि भोजपुरी साहित्य को नयी पीढ़ी तक सशक्त माध्यम के द्वारा पहुँचाया जाय तभी वो अपनी संस्कृति व सभ्यता का सम्मान कर पायेंगे और पुरातन परंपराओं से परिचित हो सकेंगे, गाँव का वैशिष्ट्य जान सकेंगे और शहरीकरण ने हम मनुष्यों को प्रकृति से कितना दूर कर दिया है यह भी समझ पायेंगे ।

ऊपर दी गयी पंक्तियों से एक बिम्ब तो बनता है लेकिन जो एकदम लुप्त हो गया उसे कौन और किसे बताये, कि एक चिड़िया ठाकुर चिरैया हुआ करती थी जो रबी; गेंहू, चना आदि की फसल की बुवाई के समय कार्तिक महीने में प्रकट होती थी मनुष्य के श्रम की साथी । आज कहाँ है वह ठाकुर चिरैया किसे मालूम? लापता तो कंधे पे हल लेकर जाता हरवाह भी हो चुका है । अब तो एक दिन हड़हड़ाता ट्रेक्टर आता है, जिसकी आवाज सुनकर आती हुई ठाकुर चिरैया भी फुर्र हो जाती है । इसी तरह फुर्र हो गयी वह चेतना जिसने ठाकुर चिरैया को जन्म दिया था बुलाया था, अपनी सहचरी बनाया था ।

# कबहीं त लवटीहें मोर बनिजरवा

**बृजेश गिरि**
**प्रवक्ता, जैश किसान इन्टर कॉलेज**
**घोसी, मऊ**

**कार्टूनिस्ट: कृतिका सिंह**

हमारे समाज में प्राचीन काल से लोक गीतों की परम्परा है । पहले हमारे यहाँ मनोरंजन के साधन या आनंददायक और श्रम के परिहार कर सकने या आपके कष्टों को कम कर सकने योग्य संसाधनों की कमी थी । आज के समय में मोबाइल, टेलीवीजन आदि अनेक संसाधन हैं जिनसे आप मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्धन भी कर सकते हैं । लेकिन पहले के समय में तकनीकि का इतना विकास नहीं था तो लोकगीत, लोक नाट्य, लोक कथा आदि मनोरंजन के साधन तो होते ही थे साथ ही साथ ये अपने मनोभावों को व्यक्त करने के मार्ग भी होते थे। उसी के अंतर्गत लोकगीतों की परम्परा रही है, इसी में संस्कार गीत आते हैं जो हमारे सोलह संस्कारों पर आधारित हैं और जन्म से मृत्यु तक विभिन्न अवसरों पर ये गाये जाते हैं । उसी प्रकार ऋतुओं से सम्बन्धित गीत हैं जिनमें कजरी है जो भाद्रपद के समय में गाया जाता है, ऐसे ही चैता, चैती आदि विभिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले गीत हैं। वर्तमान में तमाम लोकगायक व लोकगायिकाएं जैसे शारदा सिन्हा, मालिनी अवस्थी हैं जो इन गीतों को बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत करती हैं । इसी प्रकार जाति आधारित गीत भी हैं जिसमें गोंड, कहार आदि जातियों के गीत हैं ।

इन लोकगीतों में हमारे जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान श्रमगीतों का है । श्रम हर व्यक्ति का अंग है, चाहे वह अभिजात्य वर्ग हो या सामान्य वर्ग हो । पहले श्रम का दायरा तकनीकि सम्बन्धित नहीं था वरन श्रम मूल रूप से शारीरिक था जैसे जांता पीसना है, रोपनी करना है, सोहनी करना है, ओसावन करना है ऐसी स्थिति में हमारी महिलाएं जो साक्षर भले न रहीं हों पर ज्ञानी अवश्य थीं, जीवन का अनुभव उनका बहुत गहरा था । इन महिलाओं ने अपने श्रम के परिहार के लिए, अपने दुःख को व्यक्त करने के लिए श्रमगीत को माध्यम बनाया । आज भी रोपनी करने वाली महिलाएं इन गीतों को गातीं हैं । वर्षा ऋतू में धान के फसल की रोपाई होती है । खेतों में पानी लगा होता है और ऐसे खेत में ये महिलाएं अपनी साड़ी की खूंट अच्छे से बाँध, हाथों में धान का बीज लिए रोपनी करती हैं । वहां अपने रिश्तों, दुःख-सुख आदि भावनाओं को गीतों में व्यक्त करती हैं।

लोक गीतों पर बहुत अच्छा कार्य डॉ कृष्णदेव उपाध्याय जी ने किया है, इनकी किताबें भोजपुरी लोकगीत भाग एक, भाग दो, लोक साहित्य की भूमिका, लोक संस्कृति की रुपरेखा, डॉ रामनरेश त्रिपाठी जी ने अपने संकलन कविता कौमुदी में ग्राम गीतों पर बेहतरीन कार्य किया है । त्रिपाठी जी स्वयं कष्ट उठाते हुए रात-रात भर जग कर, घरों के पीछे छुप कर महिलाओं के गाये इन गीतों का संकलन करते थे । यहाँ पर डॉ कृष्णदेव उपाध्याय जी के संकलन भोजपुरी लोकगीत भाग दो (डॉ उपाध्याय कृष्णदेव, रोपनी के गीत, भोजपुरी लोकगीत भाग दो, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, तृतीय संस्करण, वर्ष 1999) में संकलित रोपनी का एक गीत प्रस्तुत है ।

प्रसङ्ग -- किसी स्त्री के उज्ज्वल, पवित्र तथा आदर्श सतीत्व का वर्णन ।

आम महुअवा के घनी रे बगिया;
ताहि बिचे राह लागि गइले हो राम ॥१॥
ताहि तर ठाढ़ भइली ए रे सोहागिनि;
नयना से निरवा ढारे हो राम ॥२॥
बाट के चलत बटोहिया पूछे काहे तुहु ठाढ़;
केकर जोहेलू तू बटिया नयन नीर ढारे हो राम ॥३॥
तोहर निअर मोर पातर बलमुआ;
उनुकर बाट खाड़ा जोहेले हो राम ॥४॥
लेहु ना साँवरि डाल भरि सोनवा;
छोड़ परदेसिया के आस हो राम ॥५॥
आगि लगइबो में डाल भरि सोनवा;
करबों परदेसिया के आस हो राम ॥६॥
कबहीं त लवटीहें मोर बनिजरवा;
पनही से तोहि के पिटइबो हो राम ॥७॥

अर्थात-

आम और महुआ का घना बागीचा है और उसके बीच में रास्ता बन गया है । उसी के नीचे एक सौभाग्यवती स्त्री खड़ी है और अपनी आँखों से आँसू गिरा रही है, अर्थात् रो रही है। रास्ते में चलनेवाले यात्री उससे पूछते हैं कि ऐ स्त्री ! तुम क्यों खड़ी हो और किसके आने की प्रतीक्षा करती हुई तुम अपनी आँखों से आँसू गिरा रही हो ?

स्त्री ने उत्तर दिया-- तुम्हारे ही समान मेरा पति भी पतला है, उसी का रास्ता मैं देख रही हूँ । यात्री ने कहा- ऐ सुन्दरी ! डाल भरकर तुम सोना मुझसे लो और अपने परदेशी पति की आशा छोड़ दो । स्त्री ने उत्तर दिया--मैं तुम्हारे डाल भर सोना में आग लगा दूंगी और परदेशी पति की बाट जोहूँगी। कभी तो मेरा पति लौटेगा--उस समय मैं तुमको जूतों से पिटवाऊँगी ।

# बुंदेलखंड की लोकनाट्य कलाएं

**अभिदीप सुहाने,**
**युवा रंगकर्मी, छतरपुर (म.प्र.)**

लोक एक बहू अर्थी शब्द है जो कि मूलतः संस्कृत का है। विश्व का कोई भी विशेष भाग, प्रजा/लोग आदि इसी शब्द के पर्याय या अर्थ हैं। लोक शब्द को परिभाषित किया जाए तो इसका अर्थ -"विश्व के किसी भी भाग में प्रचलित प्रथा", अर्थात संसार की किसी भी जगह विशेष के स्थानीय लोगों में प्रचलित प्रथा, संस्कार, रिवाज, प्रणाली को हम लोक कह सकते हैं।

लोकनाट्य को वर्णित करते हुए डॉ. हिमांशु द्विवेदी लिखते हैं -"क्षेत्रीय और जनप्रिय नाट्य शैलियों को लोकनाट्य के नाम से संबोधित किया जाता है। यह अंग्रेजी के शब्द Folk Drama से उधार लिया गया है। जिससे तात्पर्य है कि लोक नाटक मनोरंजन का एक ऐसा साधन है जो ग्राम वासियों द्वारा ग्रामीण उत्सव व त्यौहारों पर धार्मिक अनुष्ठानों में प्रस्तुत किया जाता है।" किवदन्तियां यह भी है कि भारत की लोकनाट्य शैलियां पौराणिक काल से ही चली आ रही हैं। अगर आदिमानवों के समय की बात की जाए तो उस समय नव युवकों को शिकार करने की शिक्षा देना मुश्किल था क्योंकि उस समय भाषा की उत्पत्तिनहीं हुई थी और नव युवकों को सीधा मैदान में ले जाने का अर्थ था उनकी जान को जोखिम मे डालना। अब इस समस्या का निराकरण उस समय के लोगों ने शिकार का नाटकीय रूपांतरण करके निकाला। इस निराकरण से आदिमानव न केवल एक दूसरे को शिक्षा देते थे बल्कि ये उनके मनोरंजन का साधन भी बना। लोक कलाओं के माध्यम से एक पीढ़ी अपनी आने वाली पीढ़ी को धर्म, संस्कार, समाज आदि की शिक्षा भी प्रदान करती है।

बुंदेलखंड में सामाजिक रीति-रिवाजों एवं संस्कारों पर स्वांग भरने का रिवाज बहुत सहज है, वैवाहिक अवसरों पर अनेकों संस्कार गाए जाते हैं और कई स्वांग खेले जाते हैं - बाबा का खेल (जुगिया), राई, बधाई, ढिमरयाई आदि बुंदेलखण्ड मे प्रचलित है। बुंदेलखंड के लोक नाटकों को मूल दो वर्णों में वर्गीकृत किया जा सकता है - स्वांग और रावला।

स्वांग एक प्राचीन लोकनाट्य कला है जो लोक मनोरंजन के लिए बुंदेलखंड में युगों से खेली जा रही है। यह नाट्य कला ना केवल मनोरंजनात्मक है बल्कि व्यंगात्मक भी है। स्वांग एक ऐसा लोकनाट्य है जो लोक कथाओं, लोक विश्वासों, लोक तत्वों और फूहड़ता का समावेश भी है। स्वांग मे त्रुटियों का सुधार और विकास समय के अनुरूप होता आ रहा है परंतु बुंदेलखंड में इसकी परंपरा आज भी मौलिक है। अगर स्वांग को वर्गीकृत किया जाए तो इसकी कई शैलियां देखने मिलती हैं। यथा धार्मिक, संस्कारपरक, सामाजिक, नृत्य मिश्रित आदि ।

**धार्मिक स्वांग :** वे सभी स्वांग जो धर्म से जुड़े हुए हो या जिनमें धार्मिक उद्देश्य, उपदेश, भावना, श्रद्धा, रीति-रिवाज आदि समाहित हों वे सभी स्वांग धार्मिक कहलाएंगे। जैसे -

**पारीटोरत को स्वांग** -यह स्वांग बुंदेलखंड के क्षेत्रों में युवक - युवतियों द्वारा होली के अवसर पर रंगपंचमी के दिन शाम के समय खेला जाता है। इसे खुले मैदान में खेलते हैं, जहां एक मजबूत लकड़ी के लट्ठ (जिसमे बीते एक माह या उससे भी पूर्व से उसे चिकना करने के लिए तेल रगड़ा जाता है) को जमीन में गाड़ दिया जाता है, जमीन से 15 या 20 फुट ऊंचे लट्ठ के सिरे पर एक गुड की पारी बांधी जाती है। स्वांग के समय सरपंच, ज़मीदार, चौधरी या गांव का अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति ग्रामीण युवकों को लट्ठ पर चढ़ने का आदेश देता है। 10 - 15 युवतियां बांस की लाठियां लेकर लट्ठ के चारों तरफ नाचती हुई जाती हैं, जो व्यक्ति साहस कर लट्ठ पर चढ़ता है युवतियां उस पर लाठी का प्रहार करती हैं। बावजूद इसके अगर व्यक्ति पारी तोड़ने में सफल होता है तो उसे सभी युवतियां गुलाल लगती हैं, आँचल के सिरे से उसके पांव छूती हैं और विजयी युवक हर युवती के गालों पर गुलाल लगाकर उन्हें एक सेर गुड़देता है।

**होली का स्वांग** -होली के त्यौहार पर गांव के पुरुष इकट्ठे होकर यह स्वांग करते हैं। इसमें जहाँ एक पुरुष रूप सज्जा करके महिला का वेष धारण करता है तो वही दूसरा पुरुष चीथड़ों से बने कपड़े पहनकर, चेहरे को रंगकर, बालचोटी वाली टोपी पहनता है। स्वांग के दौरान विदूषक बीच मे हास्य की पुट देता जाता है। इस स्वांग के दौरान महिला और पुरुष एक दूसरे को गुलाल लगाकर अपने भावों के ज़रिए अपनी कामुक उत्तेजनाओं को व्यक्त करते हैं।

इसीलिए इस स्वांग मे श्रृंगारिक चेष्ठाओं का अभिनय अधिक देखने मिलता है।

**धंधकायने का स्वांग** - स्वांग का यह रूप जन्माष्टमी के समय देखने मिलता है। धंधकायने का स्वांग मूल रूप से कृष्ण द्वारा माखन चोरी की नकल का खेल है। जो कि वर्तमान के समय मे मटकी फोड़ने की प्रतियोगिता कहलाने लगी है। बुंदेलखंड के शहरीय क्षत्रों मे खेले जाने वाले इस स्वांग की तैयारी में एक मटकी को माखन या दही से भरकर ककड़ी, जलेबी इत्यादि व्यंजनों से सजाया जाता है उसके बाद उसे रस्सी से बांधा जाता है। शहरीय क्षत्रों के लोग उपहार स्वरूप खिलोने, कपड़े आदि सामान भी रस्सी से बांध देते हैं। उसके बाद रस्सी खींचकर दही से भरी मटकी को जमीन से लगभग 15 से 20 फुट ऊपर लटका दिया जाता है। अगर गांवों में देखा जाए तो अब भी बुन्देलखण्ड के कुछ गांवों में यह स्वांग पुराने रिवाजों के साथ खेला जाता है, जहाँ पहले मटकी के अंदर दही भरा जाता है और फिर उसके ऊपर खीरे के कतरे, जलेबी, छुहारे, गरी, नारियल आदि की मालाएं पहनाई जाती हैं और फिर दो व्यक्ति रस्सी के दोनों सिरों को पकड़कर विपरीत दिशा मे पेड़ों पर चढ़ जाते हैं और रस्सी के सिरों को खींचकर मटकी को ज़मीन से ऊपर उठा लेते हैं।

**भाव खेलत को स्वांग** - यह स्वांग एक तरीके का जन जागरूक करने वाला स्वांग है। चूंकि बुंदेलखंड एक पिछड़ा इलाका है तो यहां के ग्राम निवासियों में अंधविश्वास की मात्रा अत्यधिक मिलती है। बुंदेलखंड में मान्यता है कि देवी-देवता स्त्री या पुरुष किसी को भी भर आते हैं किंतु कुछ देवता सिर्फ पुरषों मे भर आते हैं। इसी अंधविश्वास का फायदा लेते हुए ग्रामीण जनता से झूठे भाव भरने का नाटक करते हैं, उन्हें डरा - धमकाकर उनकी लाचारी का फायदा उठाते हैं और उनसे अपनी मांगे पूरी करवाते हैं।

**नारे सुआटा का स्वांग** -यह स्वांग बुंदेलखंड की कुंवारी कन्याओं के द्वारा क्वांर की नवदुरगों के समय खेला जाता है। इसमे सुआटा (मिट्टी का पुतला) बनाया जाता है, उसके इर्द-गिर्द चॉक पुरी जाती है और कन्याएं गीत गाकर यह स्वांग खेलती हैं। नवरात्रि के अंतिम दिनों में इस स्वांग का समापन मामुलिया और ढिरिया दर्शन के साथ होता है, जिस दौरान लोग कन्याओं को धन देते हैं।

**संस्कारपरक स्वांग:** बुंदेलखंड मे विवाहोत्सव और जन्मोत्सव के अवसर पर खेले जाने वाले स्वांगों को संस्कारपरक की श्रेणी में रखा गया है। ये स्वांग विशिष्ट रूप से विवाह अवसरों पर महिलाओं द्वारा और जन्म अवसरों पुरुषों द्वारा खेले जाते हैं। जुगिया या बाबा का खेल, भये बदाये का स्वांग इसके अंश हैं।

**भये बदाये का स्वांग** - बुंदेलखंड के ग्रामीण इलाकों में मानसिकता है कि वहां लड़कों के जन्म होने पर त्यौहारनुमा उत्सव मनाया जाता है और वही लड़कियों के जन्म होने पर निराशा जताई जाती है, भये बदाये का स्वांग इसी मानसिकता पर व्यंग व्यक्त करता है। स्वांग के दौरान पुरुष स्त्री वेष धारण कर बच्चा पैदा करने के कपाटों का वर्णन करते हुए सास की कठोरता, पुरषों की खुदगर्ज़ी और पड़ोसियों के चंट स्वभाव को दर्शाते हैं और उन सभी पर टौंट कसते हैं।

**जुगिया बाबा का खेल** -जुगिया बुंदेलखंड का बहु प्रचलित स्वांग है। यह विवाह के अवसरों पर खेला जाता है। जिसमें स्त्रियां पुरुष पात्र धारण कर रात भर स्वांग खेलती है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि जब कोई महिला पुरुष वस्त्र धारण कर, पुरुष की भांति सज्जा कर अपना वेष पूर्णतः पुरुष की तरह बना लेती है उसे जुगिया कहा जाता है।

इस स्वांग के ज़रिए घर की सुरक्षा भी होती है और संस्कारों में बंधी औरतों को अपने अनुकूल खुलने का मौका भी मिल जाता है। यह स्वांग दूल्हे के घर पर बारात के जाने के बाद प्रारम्भ होता है।

**सामाजिक स्वांग** :बुंदेलखंड के क्षेत्रों मे समाज की दशा और मानसिकता पर व्यंग प्रकट करते हुए प्रस्तुत किये जाने वाले स्वांग, सामाजिक स्वांग कहलाते हैं। सास - बहू का स्वांग, लुगया आदमी का स्वांग, डाँकू का स्वांग आदि इसकी श्रेणी में आते हैं।

**ढीमरों का स्वांग** -ढीमरों के स्वांग में एक पुरुष फटे-पुराने कपड़े का जाल बनाता है और उसे जनता की तरफ फेंकता है, जब उस जाल में कोई फस जाता है तो उस पुरुष या महिला का उपहास करते हुए ढीमर गीत गाता है। स्वांग के दौरान जाल में फंसे पुरषों को कतला, रोउआ, सोंन्ला कह कर पुकारा जाता है और महिलाओं को लोचिया, सिंगी या खड्डिया कहा जाता है। युवक को मंगूरा तो वहीं युवती को सिन्नी आदि नामों से पुकारा जाता है।

**धोबियों का स्वांग** -इस स्वांग के माध्यम से धोबी अपनी व्यथा व्यक्त करते हैं। स्वांग के द्वारा वे अपनी गरीबी, लाचारी और भुखमरी के बारे में बताते हैं। इस स्वांग मे दर्शाया जाता है कि किस प्रकार धोबी और धोबिन कपड़े धोने के लिए कड़कड़ाती ठंड में भी नदी या तालाब पर जाते हैं, वहां ठंड में कपकपाते हुए धोबी कपड़े धोता है और अपने हालात बयां करता है, वहीं दूसरी तरफ धोबिन गधे पर कपड़ों की पोटली लादे हुए गाती हुई दर्शायी जाती है।

**बरेदी का स्वांग**– बरेदी केस्वांग में गांव के निठल्ले व्यक्ति को पकड़कर बरेदी बनाया जाता है। उससे दिन भर गांव के घरों से जानवरों को चरवाने की प्रक्रिया करवाई जाती है और शाम को उन सभी जानवरों को उनके घर छुड़वाया जाता है। स्वांग के द्वारा बरेदी बना व्यक्ति भीड़ मे खड़े लोगों को विभिन्न नामों से पुकार कर अपना गुस्सा व्यक्त करता है, जैसे पुरुषों को पड़ा(भैंस का बच्चा), सांड और औरतों को भैंसिया, कुलरिया इत्यादि। साथ ही सभी लोगों के साथ हँसी-ठिठोली भी करता रहता है।

**सास बहू का स्वांग** -सास बहू के स्वांग में घरेलू नोकझोंकों के बारे में व्यंग किए जाते हैं। इस स्वांग में दर्शाया जाता है की किस प्रकार ना तो सास अपनी बहू को बेटी का दर्जा दे पाती है और ना ही बहू सास को मां का। स्वांग में यह भी दिखाया जाता है कि किस प्रकार सुपुत्र प्राप्ति से पहले पति अपनी अर्धांगनी से अधिक अपनी माँ का पक्ष रखता है किंतु सुपुत्र प्राप्ति के बाद माँ से अधिक अपनी अर्धांगनी का पक्ष रखने लगता है। कई बार बेटा और बहू द्वारा अपने सुपुत्र को लेकर सास और ननद को अकेला छोड़ घर से चले जाते हैं, इसका दृश्य भी सास बहू के स्वांग मे देखने को मिलता है।

**डाँकू का स्वांग** -बुंदेलखंड के ग्रामीण इलाकों में साहूकार और सेठों का ग्रामीण लोगों पर दबदबा बना रहता है। जिसके चलते साहूकार और सेठ ग्रामीण लोगों पर जुल्म ढाते हैं, उनसे विवाद होने पर उनके खेतों को बर्बाद कर देते हैं और उनकी ज़िंदगी को नरक बना देते हैं। डाकू का स्वांग इसी दुर्दशा को दर्शाता है और लोगों को व्यंग के साथ-साथ शिक्षा भी देता है। स्वांग के द्वारा दिखाया जाता है कि किस प्रकार एक किसान साहूकारों और सेठों के जुल्मों के कारण डाँकू बनने पर विवश हो जाता है और बाद में उन्ही साहूकारों और सेठों को लूटने जाता है, जिसके चलते सेठ या साहूकार उसे अपना धन देने से मना कर देते हैं और डाँकू वहीं उन पर तेल डालकर उन्हें जला देता है, तत्पश्चात उनका सारा धन लूटकर उस धन से गांव की बेटियों की शादी कराता है, मंदिरों के निर्माण करवाता है और बचा हुआ धन गरीबों मे बांट देता है। पर बाद में वह डाँकू एक बेड़नी की प्रेम में आकर पकड़ा जाता है और उसे उसके कर्मों के लिए फांसी की सज़ा दी जाती है।

**नृत्य मिश्रित स्वांग** : वे सभी स्वांग जिनमे अभिनव के अनुरूप नृत्य की प्रधानता हो, नृत्य मिश्रित स्वांग कहलाते हैं। । नृत्य मिश्रित स्वांगों मे लोक नृत्य के बीच मे स्वांग खेला जाता है, जिनमे गीत या दोहे संवाद बनते हैं और अभिनय के साथ प्रस्तुत किए जाते हैं। राई नृत्यनाट्य, नौरता, शिकार शैला आदि इसकी श्रेणी में आते हैं।

**राई नृत्य नाट्य** - बुंदेलखंड में राई नृत्य एक प्रसिद्ध लोक विधा है। इस नृत्य की अवधि एक से लेकर कई रातों तक की हो सकती है। बुन्देलखण्ड मे राई नृत्य उत्सवों के अवसर पर होता है। राई नृत्य में मृदंग की थाप पर बेड़नियां थिरकती हैं और मृदंग से अपने घुंघरुओं की ताल मिलाकर ग्रामीणों का मन लुभा लेती हैं।

जिस प्रकार राई मूल रूप से एक लोक नृत्य कला है उसी प्रकार नौरता, शिकार शैला, अटारी शैला आदि भी लोक नृत्य का ही हिस्सा हैं परंतु इन सभी मे संवाद, अभिनय, नकल आदि स्वांग के तत्वों का समावेश होता है इसी कारण इन्हें नृत्य मिश्रित स्वांग कहा जा सकता है। जैसे अटारी शैला मे कृष्ण के माखन चोरी की नकल देखने को मिलती है, शिकार शैला मे शिकार भरने का स्वांग देखने मिलता है आदि।

**रावला** मूलतः एक नृत्य प्रधान लोकनाट्य है जिसमें नृत्य के साथ संवाद प्रस्तुत किए जाते हैं, कई लोग इसी कारणवश रावला को नृत्य मिश्रित स्वांग जैसी आदि श्रेणियों का हिस्सा मानते हैं किंतु यह उचित नहीं है। स्वांग मनोरंजन का साधन होते हैं परंतु मूल रूप से व्यंगात्मक होते हैं जबकि रावला मूल रूप से मनोरंजनात्मक होता है, इसमें व्यंग प्रधानता नहीं होती, यह सिर्फ हास्य परक अभिनय पूर्ण नृत्य शैली है। रावला लोक नृत्य राई का पुरुषात्मक रूप है जिसमें महिला और पुरुष दोनों के किरदार पुरुष ही निभाते हैं। रावला नाट्य में विदूषक और औरत पात्र होते हैं जो एक दूसरे का अलग-अलग टौंट/तर्क के माध्यम से उपहास बनाते हैं और लोगों का मनोरंजन करते हैं।

नाटक

# हम याद बहुत आएंगे भारतेंदु बाबू को समर्पित

आदरणीया चित्रा मोहन जी प्रख्यात व वरिष्ठ रंगमंच निर्देशिका व प्रवक्ता हैं । आप भारतेंदु नाट्य अकादमी से सम्बद्ध रही हैं । "हम याद बहुत आएंगे" महान नाट्यकार व आधुनिक हिंदी के प्रणेता भारतेंदु बाबू को समर्पित आपका मौलिक नाटक है । नाट्य-कला को समर्पित वीथिका के इस मंच पर इस अद्भुत, संगीतमयी नाटक के प्रथम अंक का दूसरा दृश्य आप पाठकों के सम्मुख है ।

# हम याद बहुत आएंगे
# भारतेंदु बाबू को समर्पित

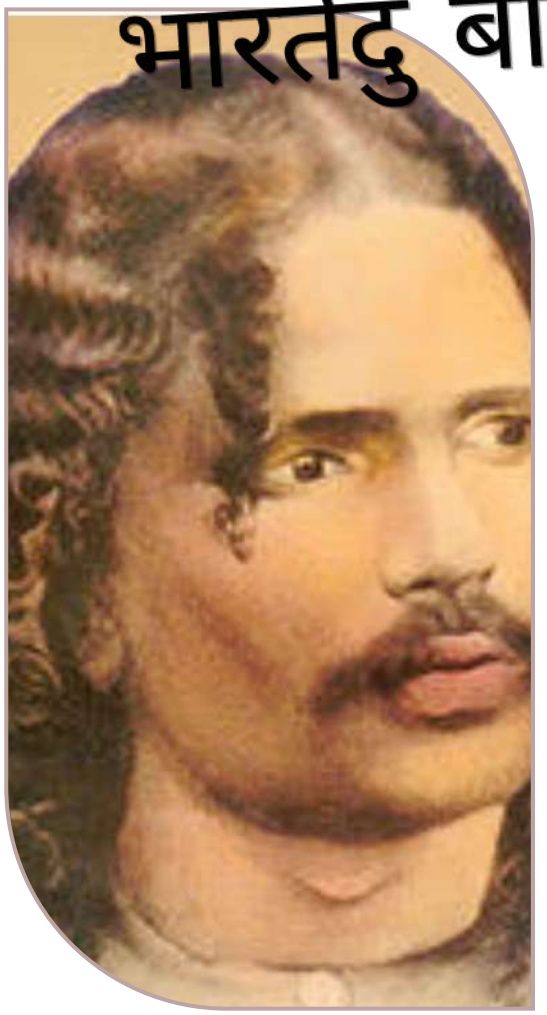

मौलिक नाटक

लेखिका- चित्रा मोहन

**अंक एक दृश्य 2**

**पात्र परिचय**

**भारतेंदु बाबू** उम्र (समयानुसार 28 से 35 वर्ष तक)
**लड़की –1**- कोरस (नयना )
**इशिता** - 26 साल (ये भी दृश्यानुसार मन्नो देवी की भूमिका में भी)
**चौबे पंडा**: उम्र - 50
**कोरस**: 5 से 6 जनों का
**मन्नो देवी**: (रुक्मिणी/ललिता की भूमिका)
**मल्लिका**: (चंद्रावली / राधा )
**लड़की – 2** - (सुमुखि) कोरस - (शोहदा, लाला, सोहा आदि कोरस से ही भूमिकाएं करेंगे)

**(संगीत के साथ मंच पर हल्का प्रकाश उभरता है। एक कुर्सी पर बैठी युवतीमेज़ पर रखे लैंप की रोशनी में कुछ लिखते पढ़ते नज़र आती है।)**

**युवती (इतिशा):** मैं इतिशा, रिसर्च स्कालर हूं। भारतेंदु हरिश्चंद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध पत्र लिख रही हूं। (अपनी रिसर्च फाइल या बुक के पन्ने पलटती है।) वाह भारतेंदु बाबू वाह ! क्या कुछ नहीं लिखा है आपने? सारे जगत की पीड़ा का बोध रहा है आपको, काश आज आप होते तो मैं स्वयं आपसे मिल पाती। कह पाती आपसे कि प्रेम के अद्भुत रंग के रचयिता, अपने जीवन में विष का प्याला पीकर भी प्रेम ही सींचते रहे, प्रेम ही उलीचते रहे, लोग भले ही तुम्हारी निंदा करते किंतु तुम यथा संभव निरपेक्ष रहने की चेष्टा करते। प्रेम चाहे हिन्दी भाषा से किया, कला साहित्य, नाटकों, समीक्षा, निबन्धों से किया अथवा निजी जीवन में किया, सदैव संतुलित ही रहे, किंतु तुम्हारे अन्तर्मन की पीड़ा भला मुझसे अधिक कौन समझेगा !

**(सहसा पीछे से एक आवाज़ आती है और पार्श्व संगीत मुखर हो उठता है। यहां से आगे का पूरा नाटक फ्लैश बैक में चलता है, जो अंत में टूटेगा)**

**मल्लिका की आवाज:** बाबूजी! बाबूजी!
**युवती इतिशा**: कौन ? कौन है वहाँ?
**मल्लिका**: जी नमस्कार! मैं मल्लिका, क्या भारतेन्दु बाबू हैं ?
**इतिशा:** ओह नमस्कार! मैं इतिशा हूँ । कहिये क्या काम है बाबूजी से?
**मल्लिका:** भेंट करना चाहती थी।
**इतिशा:** अभी तो भेंट संभव न हो सकेगी।
**मल्लिका:** क्या कहीं बाहर गये हैं वे?
**इतिशा:** जी, जरा घाट पर गये हैं, बैठकी तो वहीं जमती है उनकी।

# नटराज मंच

**मल्लिका:** इस वक्त घाट पर तो नही जा सकूंगी। (कुछ देर सोचकर) आप मेरा ये पत्र उन्हें दे देंगी?
**इतिशा:** जी अवश्य दे दूंगी (पत्र ले लेती है)
**मल्लिका:** जी बहुत-बहुत धन्यवाद, वैसे आपका परिचय जान सकती हूं?
**इतिशा: (स्वगत)** वैसे तो मैं इतिशा हूँ पर पूर्वाभ्यास में भारतेंदु बाबू की पत्नी मन्नो देवी की भूमिका करूंगी तो यही परिचय मैं दे देती हूँ **(प्रकट में)** जी मैं उनकी धर्मपत्नी मन्नी देवी हूं।
**(मल्लिका चौंकती है और इतिशा के हाथ में दिया गया अपना पत्र छीनना-चाहती है, परंतु छीन नही पाती।)**
**इतिशा (पत्नी)**: मल्लिका, हमारे बाबूजी की प्रेयसी बहुत सुना था आपके बारे में किंतु मिलने का सुअवसर पाऊँगी ये कभी नहीं सोचा था, आज परमात्मा ने ये इच्छा पूरी कर ही दी।
**(ऊपर से नीचे तक मल्लिका को सहज आकर्षण भाव से निहारती है फिर बोलती है)**
**इतिशा (पत्नी) :** कुछ तो है तुममे, जो बाबू जी मेरे रहते तुमसे प्रेम कर बैठे।
**मल्लिका:** (हाथ जोड़ कर) क्षमा करें, मैं आपकी दोषी हूं किन्तु मेरा उन पर कोई अधिकार नहीं। आप धर्मपत्नी हैं उनकी, अर्धांगिनी हैं बाबू जी की। माना कि मैं आपकी दोषी हूँ किन्तु आप स्वामिनी हैं और मैं जोगिनी।
**इतिशा**:मल्लिका देवी ! ये तुम्हारा दृष्टिकोण है। भले ही मैं स्वामिनी या धर्मपत्नी हूं उनकी, किंतु उनके हृदय पर मेरा अधिकार नहीं। उनके हृदय सिंहासन पर तुम ही विराजमान हो, तुम जोगिनी नहीं बाबू जी की हृदयांगिनी हो और मैं स्वामिनी होकर भी प्रेम विहीना जोगिनी

**(मल्लिका स्तब्ध खड़ी है, इतिशा मल्लिका का दिया पत्र खोलकर पढ़ती है, आरंभ की दो तीन पंक्तियों के पश्चात मल्लिका स्वयं बोलेगी)**
**इतिशा (पत्नी):** सबसे प्रथम पूज्य बाबू जी को मेरा विनत प्रणाम
**(इतिशा अपनी पीठ फेर लेती है, अब दर्शकों की ओर मल्लिका का मुख दिखाई देता है आगे वह स्वयं बोलती है)**
**मल्लिका :**

**मेरे प्यारे सों संदेसवा कौन कहे जाये**
**जिन की वेदना हरें वो वचन सुनाए राम।**
**कोई सखी देय मोरी पाती पहुँचाय**
**जाय के बुलाय लावें बहुत मनाए राम ।**
**मिलै हरीचंद मोरा जियरा जुड़ाय**
**अब विरह की पीर सही न जाये राम।**

**(मल्लिका द्वारा ये पंक्तियां पढ़ते-पढ़ते एक फ्लैश बैक का वातावरण बनता है जिसमें स्वयं भारतेंदु मंच पर आते हैं, जहां मल्लिका बोलती है,भारतेंदु प्रतिक्रिया देते है। दूसरे स्पॉट में इतिशा पत्र पढ़ने का अभिनय करती है। )**
**मल्लिका : ( भारतेंदु से)** चलो भला सब अपनी वीरता हम पर ही दिखायी थी ? हां भला, मैंने तो लोक लाज, अपना बिराना, सब छोड़कर के तुम्हें पाया, भला तुमने हमें छोड़ के क्या पाया ? रूठ कर यहाँ चले आए और मुझे देखो कैसे-कैसे जतन करके तुमने मिलने, जोगन बनी यहाँ तक चली आई। तुम तो निर्मोही हो निर्मोही।
**भारतेंदु:** जगीने चमन गुल खिलाती है क्या-क्या ? बदलता है रंग आसमां कैसे-कैसे। कोई कहता है हमसे सुंदर संसार में कोई नहीं,कोई कसम खाता है आप सा पंडित ज्ञानी नहीं देखा, कोई पैगाम देता है कि फलानी आप पर जान देती है, आप के बिना तड़प रही हैं। रही सही कसर आपने पूरी कर दी हम पर दुष्टता का, निर्मोही होने का इल्ज़ाम लगा कर।
**मल्लिका:**हाय राम ! आप हमको ही ताना मार रहे है? एक हम हैं कि आपसे मिलने लोक लाज छोड़ कर यहाँ दौड़े चले आए, हमें पता था आप नही मिलेंगे तो एक पत्र में अपने दिल का हाल लिख कर ले आए।

# नटराज मंच

**भारतेंदु :** कहाँ है वो पत्र, ज़रा दिखाना, हम भी तो पढ़ें क्या है!
**इतिशा (पत्नी):** पत्र हमारे पास है। (दोनों इतिशा की ओर मुड़ते है।) गलती से इन्होंने हमें नहीं पहचाना और आपका पत्र हमें थमा बैठी। बड़ी भूल कर दी, है न !
**भारतेन्दु (मन्नो देवी से)**: देखो मन्नो, किसी दूसरे का पत्र पढ़ना धरम के अनुकूल नही है।
**इतिशा:** (क्रोध से) अच्छा ? और धर्मपत्नी के रहते प्रेयसी के अधीन रहना धरम संगत है ?
**मल्लिका:** भूल मुझसे हुई है। आप दोनों शांत रहें।
**मन्नो देवी:** आपसे कोई भूल नही हुई। भूल तो हमसे हुई जो हम इनको समझ ही नहीं पाए। ये स्वतंत्र रहे रचनाएँ लिखते रहें, इनके लेखन में बाधा न पड़े इसलिए घर गिरहस्थी का कोई दबाव इन पर नहीं पड़ने दिया। ये पूरा घर कैसे चलता है? आटे-दाल का भाव क्या है, इन्हें आजतक नही पता। बड़ी प्रशंसा होती है इनकी। महफिलों की जान हैं ये, भारत के इंदु भारतेंदु हैं, किंतु हमारे क्या हैं ? क्या इन्होंने हमारे प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाया ?
**भारतेंदु:** देखो मन्नो ! हमने तुमको कभी कोई कमी नहीं होने दी तुमने जो चाहा, जैसे चाहा गृहस्थी चलाई। हमने कभी कोई दखल अंदाजी नहीं की। तुम्हारे प्रति अपने पति धर्म का सदैव पालन किया है हमने ।
**इतिशा (मन्नो):** वाह, हृदय प्रसन्न हो गया हमारा। पति धर्म ? पति धर्म की बात करते हैं आप ? तो ये - मल्लिका आप की कौन लगती है ? इनके प्रति आपका कौन सा धर्म निभाया जा रहा है?
**भारतेंदु:** मनुष्यता का, प्रेम का, रचनात्मकता और कला बोध की रसिकता का धर्म भी सहज धर्म है। तुमको इसे समझना होगा मन्नो । हम विवश है। आपका अपमान नहीं कर सकते किंतु घर आए अतिथि का निरादर भी तो नहीं कर सकते न ? मल्लिका इतनी दूर से आई हैं इनका आतिथ्य भी आप ही करेंगी, चलिये अब भीतर चलिये।
**मल्लिका:** नहीं बाबू जी । ये आपके पवित्र घर की संस्कारों से रची बसी ड्योढी, मुझ जैसी अभागिन पार नही कर सकती। ये आपका,आपकी धर्मपत्नी का अधिकार क्षेत्र है। मैं इसमें हरगिज़ प्रवेश नहीं करूंगी
**(इतिशा (मन्नो) एक पल सबको देखती है फिर आगे बढ़ कर मल्लिका का हाथ थाम लेती है)**
**इतिशा (मन्नो):** मल्लिका, आप हमारी अतिथि हैं। अतिथि देवो भव: इसलिये इस अधिकार क्षेत्र की स्वामिनी, मैं मन्नो देवी आपको आज्ञा देती हैं कि आप सादर भीतर प्रवेश करें और हमारा आतिथ्य स्वीकार करे।
**(मल्लिका ठिठकती है परन्तु इतिशा यानि मन्नो देवी उसे भीतर खींच ले जाती है, भारतेंदु भी भीतर जाने के लिए कदम बढ़ाते हैं तो मन्नो देवी दोनों हाथों से डयोढ़ी छेक कर खड़ी हो जाती हैं )**
**इतिशा (मन्नो):** नहीं, आज और अभी, आप नहीं आ सकते।

**भौंरा रे, बौरानो लखि बौर।।**
**लुब्ध्यौ उतहिं फिरत मंडरानयौ,**
**जात कहूँ नहि और ।।**
**(मल्लिका हँस पड़ती है, भारतेंदु झेंप जाते हैं)**

**इतिशा (मन्नो):** अब लजाने, झेंपने की आवश्यकता नही है। पत्नी हूँ आपकी।

**जग में पतिव्रता सम नहीं आन,**
**नारी हेतु कोउ धर्म न दूजो**
**जग में पसु समान ।**
**अनुसूया, सीता-सावित्री इनके चरित्र प्रमान।**

**भारतेंदु :** अरे ये तो हमारे गीत रूपक सती प्रताप का अंश है, अपने कब और कहाँ पढ़ा ?
**इतिशा (मन्नोदेवी):** आपके पीछे आपके बैठक की साफ-सफाई भी हम ही करते हैं, ये आप भूल गए। बस बीच-बीच मे आपकी रचनाएँ भी पढ़ लेते है।
**भारतेंदु**: वाह-वाह मन्नो
**धन्य देस कुल जंह निबसत है नारी सती सुजान ।।**
**धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य ब्याह स्थान ।।**
**मल्लिका:(**आगे पूरा करती है)
**सब समर्थ पति बरता नारी**
**इन सम और नआन / याही ते स्वर्गहु में इन को करत सबै गुण गान।**
**(तीनों एक दूसरे को देख मुस्कुराते हैं, मन्नो धीरे से ड्योढी से हाथ हटा लेती हैं और भारतेंदु को भीतर आने का इशारा करती हैं। सबका भीतर प्रस्थान धीरे-धीरे संगीत मुखर हो उठता है।)**
**(क्रमशः अगले अंक में .....)**

# हिन्दी या इन्दी

प्रो. मोहम्मद ज़ियाउल्लाह
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
डीसीएसके पीजी कॉलेज , मऊ

हिन्दी एक महान भाषा है। सैकड़ों साल पुरानी और भारत की निशानी है। गर्व की बात यह है कि बिना किसी दरबारी प्रश्रय के ही यह सदियों से फलती-फूलती रही है । भारत के किसी राजा ने हिन्दी को दरबारी भाषा का दर्ज़ा नही दिया मगर फिर भी आज हिन्दी भारत के होठों पर वैसे ही जचती है जैसे दुलहन के माथे पर बिन्दी सजती है।

मगर हाय रे आधुनिकता ! इसने भाषा को भी नही बख्शा। हालत यह है कि आज दिल्ली में हिन्दी 'इन्दी' हो चुकी है। इन्दी- अर्थात इंगलिश+हिन्दी से निर्मित तथाकथित आधुनिकतावादी हिन्दी ।

इसका मैं स्वयं साक्षात् दर्शी हूँ, जैसा कि एक बार मैंने हिम्मत कर के अपने ऐसे ही इन्दीवादी मित्र से पूछ ही लिया। भाई साहब आप अपनी बोल-चाल में अंग्रेजी शब्दों का इस प्रकार अत्याधिक प्रयोग क्यों करते हैं? फिर क्या था, 'उन्होंने तो मेरी बोलती ही बन्द कर दी ।

कहने लगे, "मैंने तो अपनी life में, कभी भी English Words का use ही नही किया । यह तो मुझ पर आप एक Allegation लगा रहे हैं। या विरोधियों की तरफ से उड़ाई गई यह एक अफवाह है ।

छोड़िए, जाने दीजिये आप टेंशन मत लिजिये । आप मेरी Latest पक्तियां सुनिए!

कितना Ignore करूं कितना Compromise करूँ
अपनो के फरेबों को कितना Realise करूँ
Now its become too much to understand
तुमही बताओ "जिया"
How much energy utilise करूँ

(बकलम लार्ड नवाब मोहम्मद ज़ियाउल्लाह ख़ुद)

# हम, हमारी पहचान व हमारी समझ

**डॉ शिवमूरत यादव**
**Post Doctoral Research Fellow**
**University of Oklahoma, Health Sciences Center, USA**

चित्र : पूजा मद्धेशिया

नवजात शिशु से शुरूआत करें तो हम सभी एक ही हैं, जैसे-जैसे व्यक्ति बड़ा होता जाता है हर पल उसका अनुभव बढ़ता जाता है। हर व्यक्ति का अनुभव अलग होता है जो स्मृति के रूप में मनुष्य के मस्तिष्क में संग्रहित होता रहता है। आदमी हर पल कुछ न कुछ अनुभव करता रहता है। अतः हमारी स्मृति में अनगिनत सूचनायें रहती हैं। आदमी के उम्र के साथ यह सूचना संग्रह बढ़ता जाता है। इन्हीं संग्रहित सूचनाओं के आधार पर ही हम अच्छे या बूरे परिस्थिति में निर्णय या प्रतिक्रिया देते हैं। इसी निर्णय या प्रतिक्रिया के आधार को सामान्यतया "स्वभाव" कहा जाता है। इस स्वभाव को हम एक संज्ञा देकर उसे नाम में बदल देते हैं और यहीं से शुरूआत होती है किसी व्यक्ति के पहचान की।

नाम किसी व्यक्ति विशेष का नहीं होता वह उसकी तथा उससे संबंधित सूचनाओं का होता है। उदाहरण के लिये अगर किसी व्यक्ति की सूचना को पूरी तरह से समाप्त कर दिया जाये तो आमतौर पर हम उसे पागल कहते हैं। क्योंकि वह व्यक्ति अपनी मूल पहचान को खो देता है। मैं यहां पर सबसे आवश्यक बात यह बताना चाहूंगा कि किसी भी व्यक्ति का अनुभव प्रतिपल बदल रहा होता है और साथ-साथ उसका शारिरीक व मानसिक परिवर्तन भी होता रहता है, अतः एक ही व्यक्ति में अनेकों व्यक्तित्व हो सकते हैं।

मनुष्य की बाहरी पहचान के अतिरिक्त उसकी एक अपने अंदर की पहचान भी होती है। अपनी कला-सृजन आदि माध्यमों से वह उसे प्रकट करता रहता है। मनुष्य की बहुत सी इच्छाएं व विचार सामाजिक प्रतिबंधों के कारण अभिव्यक्त नहीं हो पाते और उनका दमन किये जाने पर वे व्यक्ति के अर्द्धचेतन मस्तिष्क में और वहां से अचेतन मस्तिष्क में सोये पड़े रहते हैं और उचित अवसर आने पर सक्रिय होने का प्रयास करते रहते हैं। वह अपने अनुभवों के आधार पर समय देख अपने व्यक्तित्व के इस रूप को भी प्रकट करता रहता है।

हम समझ के बिंदू पर आते हैं। वास्तव में हमारा शरीर सुख-दुःख, अमीर-गरीब का आभास अपने अनुभवों के आधार पर करता है। कहते हैं किसी बच्चे को डराओ मत नहीं तो डर उसके अंदर बैठ जायेगा। समझ यह है कि किसी भाव पर हम जितना अधिक विचार करते हैं वह हमें उतना अधिक प्रभावित करता है। अगर हम दुःख में भी सुख का अनुभव करें, अनादर किये जाने पर भी उसे आदर के रूप में लें और अपना कार्य जारी रखें तो यह हमारे मस्तिष्क की क्षमता है जिसे हम समझ कहते हैं।

हम मानव अपने मस्तिष्क में संग्रहित सूचनाओं के आधार पर ही अपनी भाषा, अपनी पहचान, अपनी समझ, अपने व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। आने वाली पीढ़ियों में यादृच्छिक रूप से यह सूचना स्थानांतरित होती चली जाती है। इन सूचनाओं को "जैसा है वैसा ही ले लिया' के रूप में संग्रहित कर हम तब तक इनमे कोई परिवर्तन नहीं करते जब तक अन्तश्चेतना में उससे बड़ी और प्रभावकारी कोई सूचना नहीं आती।
यह इतनी प्रभावशाली होती है कि अपने आस-पास के मिथकीय कथाओं के पात्रों में भी हम एकदम से कोई परिवर्तन स्वीकार नहीं करते। मनुष्य की सूचनाएं ही उसके सम्पूर्ण परिचय का आधार हैं।

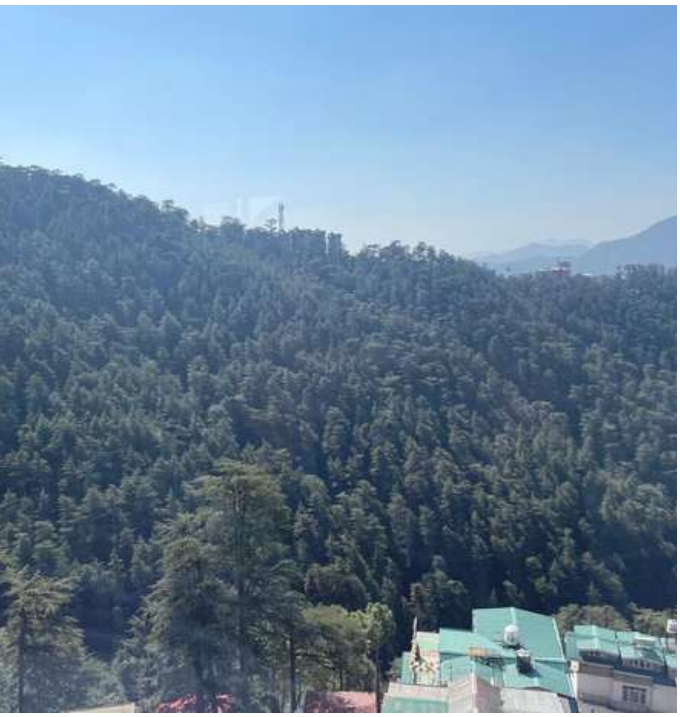

# यमुनोत्री

ई वैभव द्विवेदी

हम इंसान बहुत जिज्ञासु हैं, आज के समय से ही नहीं बल्कि मनुष्य ने अपने शुरुआत से घुमक्कड़ी को अपनी जिज्ञासा शांत करने का एक प्रमुख साधन बनाया है । अगर आप बड़े शहरों में जायें तो वहां के लगभग हर विद्यालय में साप्ताहिक कार्यक्रम “कहीं चलते हैं” से शुरू होकर “आख़िरकार पहुँच गये” पर समाप्त होता है ।

यह लेख जो नितांत मेरा अनुभव है जिसे आप चाहें तो कहानी भी कह सकते हैं, आख़िरकार कहानियां भ५ तो अनुभवों को संजोती ही हैं, एक ऐसे छोटे शहर के विद्यार्थी का है जो अपने लगभग आधी उम्र तक तो समझ ही नहीं सका की जीवन की गाड़ी घुमक्कड़ी और दिवास्वप्नों से नही चलती । खैर अपनी कथा से आगे अब चलते हैं उस दिन पर जब यह अनुभव गाथा शुरू हुई थी ।

शुरुआत होती है एक हॉस्टल से जहाँ एक सुबह एक युवा और एक उससे थोड़े बड़े साथी ( सोच में दोनों लगभग बराबर) ने कुछ अध्यात्म से जुड़ा करने को सोचा, वास्तव में उस समय तो घुमना और कुछ नया करना ही लक्ष्य था । यमनोत्री जाने का कार्यक्रम बना। तीन दिमागों की यह योजना कब बारह लोगों का समूह बन गयी, बता पाना थोडा कठिन है ( और लेखक जब आज इसे लिख रहा है तो लगभग आधी उम्र से कुछ बड़ा हो चला है)।

सो समय सुबह साढ़े नौ का था और बुलेट ले तीन लोग तैयार थे, कमी थी सिर्फ एक और इन्सान की, असल में एक बुलेट परएक साथी अकेले था सो दल पूरा-पूरा सा नहीं लग रहा था । इंतजार बस एक का था और दल बन गया बारह लोगों का ।

मंजिल 150 किमी दूर थी, चले तो रात बीतती गयी । रात के सफ़र में पहाड़ी रास्ते कब आपका साथ छोड़ दें आपको पता ही नहीं चलता, इसलिए समय-समय पर रुक के उन्हें मनाना पड़ता है । थके हुए सब पहुचें उन पहाड़ों के बीच जहाँ योजना कर के भी कम ही लोग पहुँच पाते हैं । उस रात के बाद जो सुबह देखी तो हमेशा द्वंद में रहने वाले लोग भी अचानक से शांत होकर उस दृश्य को निहारते ही रह गये । हम उस सुहानी सुबह को हमेशा के लिए अपने साथ लेकर आगे बढ़े । जिस शुद्धता को हम अपने शहरों, घरों में खोजते रहते हैं, वह एकदम से वहां रास्तों और गावों में बिखरी मिल जाती ।

पहुंचना यमनोत्री था, देहरादून कण्डौली से गंगोत्री पहुंच गये । महीना सितम्बर का था पर ठण्ड भारत के उत्तरी समतल भागों के दिसम्बर महीने की याद दिला रही थी ।

गंगोत्री अध्यात्म का एक अलग शांत व अनूठा स्थान है । जहां आप अपनी आध्यात्मिक शांति को पाने या बस समय का सदुपयोग करने जा सकते हैं । हम वहां पहुंचे तो कुछ ने डुबकी लगायी तो कुछ ने हिम्मत दिखायी । लेकिन उस सुबह सूर्य की उन किरणों का आनंद सबने लिया ।

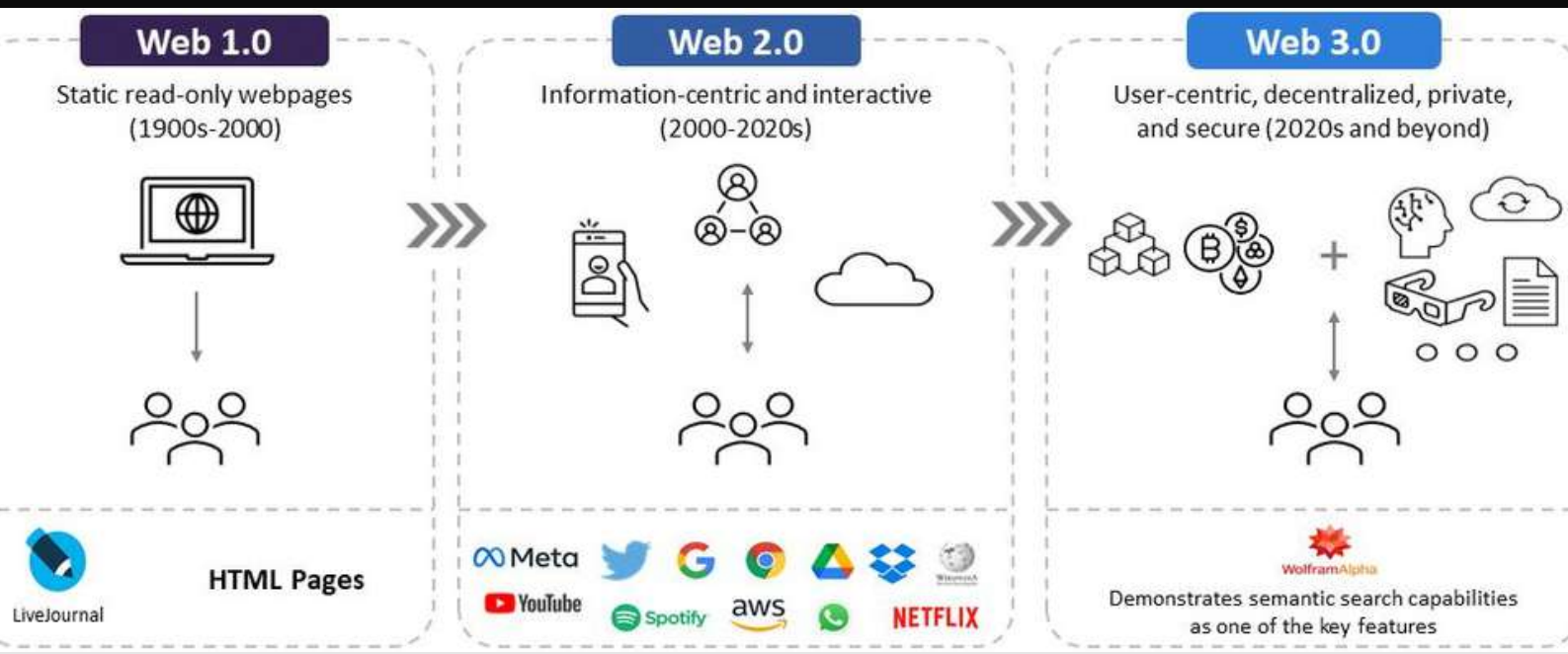


# वेब 3.0 – दी ग्लोबल ब्रेन

**राज बरेठिया, सॉफ्टवेयर इंजिनियर**

यह जीवन के हर पहलू में डिजिटल क्रांति का युग है। राजनीति से लेकर धर्म तक, सामाजिक गतिशीलता से लेकर आर्थिक स्वतंत्रता तक, व्यक्तिगत गोपनीयता से लेकर सार्वजनिक मंचों तक या सोशल मीडिया से लेकर पारिवारिक संस्कृति तक, इंटरनेट हर जगह है।

1989 में CERN, जेनेवा में टिम बर्नर्स-ली द्वारा खुली और विकेन्द्रीकृत तकनीक बनाने का विचार विकसित किया गया था जो पृथ्वी पर कहीं से भी जानकारी साझा करने की अनुमति देता था, जिसे व्यापक रूप से इंटरनेट के रूप में जाना जाता है।

बर्नर्स-ली के निर्माण की पहली शुरुआत, जिसे अब 'वेब 1.0' के नाम से जाना जाता है, लगभग 1990 से 2004 के बीच हुई थी। वेब 1.0 मुख्य रूप से कंपनियों के स्वामित्व वाली केवल सामग्री वाली वेबसाइटें थीं और उपयोगकर्ताओं के बीच लगभग शून्य बातचीत थी।

यदि वेब 1.0 में बड़े दर्शकों के लिए सामग्री तैयार करने वाले व्यक्तियों का एक छोटा समूह शामिल है, तो वेब 2.0 (2004 - अब तक) में कई लोग शामिल हैं जो बढ़ते दर्शकों के लिए और भी अधिक सामग्री तैयार कर रहे हैं।

वेब 2.0 पढ़ने पर वेब 1.0 की तुलना में भागीदारी और योगदान पर अधिक जोर देता है। इसलिए, वेब 2.0 को "सहभागी सामाजिक वेब" के रूप में वर्णित किया गया है, जबकि वेब 1.0 को "केवल पढ़ने योग्य वेब" के रूप में संदर्भित किया गया है।

हालाँकि भविष्य वेब 3.0 का है, जिसे कभी-कभी वेब 3 के नाम से भी जाना जाता है, यह वेब की अगली पीढ़ी की अवधारणा है, जिसमें अधिकांश उपयोगकर्ता विकेंद्रीकृत नेटवर्क के माध्यम से जुड़े रहेंगे और उनके पास अपने स्वयं के डेटा तक पहुंच होगी। यह एक युवा और विकासशील पारिस्थितिकी तंत्र है। गेविन वुड ने यह शब्द 2014 में गढ़ा था, लेकिन इसके कई विचार हाल ही में वास्तविकता बन गए हैं। इसके मूल में Web3 उपयोगकर्ताओं को स्वामित्व के रूप में शक्ति वापस देने के लिए ब्लॉकचेन, क्रिप्टोकरेंसी और एनएफटी का उपयोग करना है। अधिक से अधिक, हम यह कह सकते हैं कि Web1 रीड-ओनली के लिए था, Web2 रीड-राइट के लिए है, Web3 रीड-राइट-ओन के लिए होगा।

वेब 3.0 मशीनों को इंसानों की तरह ही जानकारी समझने में सक्षम बनाएगा। वेब 3.0 मशीन लर्निंग का भी उपयोग करेगा, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) का एक उपसमूह है जो डेटा और एल्गोरिदम का उपयोग करके मानव की नकल करता है, धीरे-धीरे इसकी सटीकता में सुधार करता है। केवल लक्षित विज्ञापन के बजाय, जो वर्तमान प्रयासों का बहुमत है, इन क्षमताओं के परिणामस्वरूप चिकित्सा विकास, अंतरिक्ष अन्वेषण, क्वांटम भौतिकी, मीडिया और मनोरंजन उद्योग, बैंकिंग और वित्त, नवीकरणीय जैसे विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से और अधिक प्रासंगिक परिणाम मिलेंगे। ऊर्जा आदि दार्शनिक दृष्टि से, वेब 3.0 विकेंद्रीकरण, खुलेपन और वितरित स्वामित्व के सिद्धांतों पर आधारित है। उपभोक्ता उपयोगिता की दृष्टि से यह अधिक वैयक्तिकृत है। वेब 3.0 में विकेंद्रीकृत स्वायत्त संस्थाएं चलाने वाले ऐप्स (डीएओ) की सुविधा होगी। डीएओ (विकेंद्रीकृत स्वायत्त संगठन) एक समूह है जो अपने समुदाय द्वारा चलाया और स्वामित्व रखता है। उपयोगकर्ता डीएओ के माध्यम से संवाद करेंगे। परिणामस्वरूप, निर्णय अब एक केंद्रीकृत प्राधिकरण द्वारा नहीं किए जाते हैं, बल्कि उन उपयोगकर्ताओं द्वारा किए जाते हैं जिनके पास शासन टोकन हैं, जिन्हें इन विकेंद्रीकृत कार्यक्रमों के रखरखाव में भाग लेने या उन्हें खरीदकर प्राप्त किया जा सकता है।

एक विशिष्ट निगम में, सीईओ शेयरधारकों द्वारा अनुमोदित परिवर्तनों को लागू करने के लिए जिम्मेदार होता है। डीएओ में टोकन धारक उन संशोधनों पर मतदान कर सकते हैं, जिन्हें मंजूरी मिलने पर तुरंत स्मार्ट अनुबंध के माध्यम से डीएओ के कोड में शामिल किया जाता है। चूंकि वे लोकतांत्रिक हैं, इसलिए सभी को डीएओ के स्रोत कोड तक पहुंच मिलती है।

डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू या वर्ल्ड वाइड वेब बनाने वाले डेवलपर टिम बर्नर्स-ली ने मूल रूप से वेब 3.0 को सिमेंटिक वेब के रूप में संदर्भित किया और एक बुद्धिमान, आत्मनिर्भर और खुला इंटरनेट देखा, जिसने एआई और मशीन लर्निंग को "वैश्विक मस्तिष्क" के रूप में कार्य करने के लिए नियोजित किया।

अकेले पिछले वर्ष में, क्रिप्टोकरेंसी, ब्लॉकचेन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, शासन के नए रूपों के साथ बड़े पैमाने पर प्रयोग और डिजिटल पहचान में क्रांतियों में रुचि में काफी वृद्धि हुई है।

हम Web3 के साथ एक बेहतर वेब बनाने की शुरुआत में ही हैं, लेकिन जैसे-जैसे हम इसका समर्थन करने वाले बुनियादी ढांचे में सुधार करना जारी रखेंगे, वेब का भविष्य उज्ज्वल दिखना शुरू हो जायेगा ।

# हांड़ी की कलौंजी

अर्चिता उपाध्याय

कलौंजी का नाम आते ही भोजन के खुबसूरती का एहसास होने लगता है । वैसे तो तरह-तरह से लोग बनाते ही हैं लेकिन गांव की सोंधी मिट्टी से बनी कलौंजी के क्या कहने, आइए दादी की रसोई में से आज उनके हाथ से बनी कलौंजी बनाना सीखते हैं.....

एक पाव करेले के लिए भरावन की सामग्री के लिए एक प्याज, पांच कली लहसुन व दो हरी मिर्च को महीन कस लेंगे तथा अन्य मसालों को तवे पर भून कर पीस लेंगे ।अब प्याज को कढ़ाई में भून कर लाल होने देंगे, फिर उसमें लहसुन मिर्च मिलाएंगे उसके बाद उसमें अन्य मसाला, खटाई, नमक सब मिलाकर करेले में भर लेंगे।

अब गोइठा जला कर आंच तैयार होते ही हंड़िया में माटी के ढेले को रख कर उस पर भरे करेले को रख देंगे और हंड़िया का मुंह ढंक देंगे । धीमी आंच पर जब करेला तैयार होगा उसके बाद अहा क्या कहने । आप हर तरह की कलौंजी खाना भूल जाएंगे । इतना स्वादिष्ट होगा दादी की कलौंजी ।

## हांड़ी की कलौंजी

**सामग्री-**

मिट्टी की हांडी---1 छोटी
मिट्टी के ढेले ---7/8
गोईठा(उपला)-8
करैला--250 ग्राम
मंगरैल
जवाईन
सौंफ
अमचूर या भरी मिर्च का अंचार
इच्छानुसार प्याज
लहसुन
हरी मिर्च

# नानी का घर... © आनंद कुमार

सच में कितना प्यारा था
मेरे नानी का घर...
चापा कल से, पानी का भरना
नदी में जाकर, छप्प-छप्प नहाना
बगीचे में जाकर, शरीफा को खाना,
आम के पेड़ पर, लटक-लटक जाना
लुका-छिपी के खेल में, खटिया के नीचे
बड़ा मज़ा आता था,
मेरी शिकायत पे, मामा जब सबको पीटे
सच में कितना प्यारा था
मेरे नानी का घर...

मां के सम्बोधन से, क बेटा कह कर
मेरे को, नाना का पुकारना
पास बुलाकर, दुलारना, पुचकारना
मामा का सुबह सबेरे, जलेबी ले आना
कभी-कभी ले जाकर, पूड़ी -सब्जी खिलाना
मां जैसी मामी का, प्यार उड़ेलना
मौसी का बाबू कहकर, मुझको बुलाना
भाई-बहनों की फौज थी कितनी
सच में यारों नानी के घर, मौज थी कितनी

खप्पर नहीं है, छप्पर नहीं
सोंधी-सोंधी मिट्टी की अब खुशबू नहीं
नाना नहीं हैं, और नानी नहीं हैं
बचपन की चिल्लाहट और यारी नहीं है
नानी का पुराना वह घर भी नहीं है
बने हैं इमारत पर हिस्से कई हैं
बचे शेष बूढ़े, जो प्यार खूब हैं करते
पर जाऊं मैं कैसे, मेरे पास समय ही नहीं है...

# ग़ज़ल © विनय मिश्र

वरिष्ठ साहित्यकार, एसो. प्रोफेसर
राजकीय कला पीजी कॉलेज, अलवर

शहर हो या देहात में औरत
जीवन की हर बात में औरत

टूटी छत की चिंताएँ ले
छत पर है बरसात में औरत

सबकी फ़िक्र समेटे खुद में
बँटती है खैरात में औरत

ख़्वाबों में सूरज है लेकिन
एक अँधेरी रात में औरत

प्यार उदासी यादें चाहत
ले आई सौगात में औरत

एक बिसात बिछी हो जैसे
उलझी है शह-मात में औरत

कितना भी वो मर्द हो लेकिन
मर्द के है जज़्बात में औरत

# गांव बोलता नहीं, चुप रहता है अब

© डॉ. सौरभ श्रीवास्तव

**बरगद का वो पेड़**
**जिसकी जड़ें फैली थी चारों तरफ**
**वर्षों से वो भी चुप है,**
**गायों का झुंड भी अब शांत है**
**गांव के बगल से जो नदी गुजरती है**
**वो भी अब चुपचाप बस बहती है**

**वो विशाल पीपल वाला चबूतरा**
**बूढ़ों- बुजुर्गो वाला**
**वहां से भी अब कोई आवाज नहीं आती,**
**अरे अभी याद आया**
**वो आम वाला बगीचा भी तो नहीं रहा**
**जिसकी महक आती थी साल में एक बार**

**सब मौजूद है गांव की गोद में**
**पर गांव बोलता नही अब**
**उसकी आवाज नही आती,**
**बरसात होने पर -**
**गांव की मिट्टी महकती नही अब,**
**(नंग-धड़ंग बच्चे खेलते भी तो नही मिट्टी में)**
**वो भी शांत है, गांव के सन्नाटे में**

**गांव बोलता है, किसी और भाषा में,**
**किसी और तहजीब में,**
**गांव बोलता है मौन होकर**
**अपनी नम आंखों से एकटक देखता है**
**फिर मानो अपनी आंखे मूंद लेता है अचानक।**

छाया चित्र : चंद्रेश वर्मा

# क था

## फागू का फगुआ

डॉ धनञ्जय शर्मा
लेखक व असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सर्वोदय पोस्ट ग्रेजुएट महाविद्यालय, घोसी, मऊ

**बलिया जिले के बिल्थरारोड स्टेशन से दो मील पश्चिम बसा गाँव ससना अपनी प्राचीनता को लेकर उतना प्रसिद्ध नहीं है, जितना ससना धाम को लेकर है। धाम इस अर्थ में कि संवत् 1773 में जन्मे संत स्वामी शिवनारायण साहब की यह कर्मस्थली थी। शिवनारायणी संप्रदाय की सदर गादी ससना में होने के कारण दूर-दराज के संतो-महात्माओं का आना जाना लगा रहता है। धाम पर सावन की सप्तमी और बसंत पंचमी का दिन धूम-धाम से मनाया जाता है। बसंत पंचमी के दिन स्वामी जी को ज्ञान प्राप्ति हुई थी और सावन सप्तमी को नश्वर शरीर का त्याग किए थे। अतः इन दोनो दिनों के अवसर पर सत्संग का आयोजन होता है, जिसमें देश-विदेश से संतों-भक्तों का आना होता है। पिछले दिनो सत्संग में अमेरिका, नेपाल के अतिरिक्त देश में प. बंगाल, बिहार, उड़ीसा, झारखण्ड, असम, उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि स्थानों से संतों का आना हुआ था । धाम पर आते-जाते लोग एक दूसरे के अभिवादन में'बंदगी साहब' और 'साहेब बंदगी' बोलते हैं। कहना न होगा की शिवनारायणी संप्रदाय की इस प्राचीन परम्परा को लोग आज भी अपने हृदय में संजोए हुए हैं।**

**इन त्यौहारों में होली (फगुआ) भी बड़े हर्षोल्लास से मनायी जाती है जो अपनी प्राचीनता और लोक परम्परा को लेकर आज भी प्रासंगिक बनी हुई है। यहां फगुआ संत-मिलन का फगुआ है। जैसे अलग-अलग रंग आपस में मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार समाज के लोग जाति-वर्ण-धर्म त्याग कर मानवीय एकता को धारण करते हैं । लोक रीति के अनुसार फागुन मास में पड़ने वाल फगुआ अपनी फगुनाहटा हवाओं के कारण प्रसिद्ध है। फगुनाहटा हवाओं में इतनी मादकता होती है कि पूरी प्रकृति मादक लगने लगती है। पेड़ों पर नए-नए पत्ते, फूल और कलियों से आच्छादित प्रकृति का आँगन उपवन सा प्रतीत होने लगता है। खेलों में कतारबद्ध फसलों में गेहूं, जौ, चना, मटर, अरहर, सरसो, रागी आदि नीले, पीले, सफेद लाल, गुलाबी पुष्पों से सुसज्जित प्रकृति अपने यौवन की पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है। बागों में महुआ और आम की अमराइयों के बीच कूकती हुई कोयल मानो बसन्त का संदेश लाती हो। समशीतोष्ण ऋतु में रात्रि के द्वितीय प्रहर में ढोलक की थाप और झाल-मंजीरे पर नाचती कीर्तनिया समूह की हथेली तथा फागू की जुबान से जोगीरा का सुर । इनके बीच थिरकते हुए नर्तक के घुंघरु की आवाज रात के सन्नाटे को चीरते हुए व्यस्कों की धड़कनों को बढ़ा देती है।**

**निर्गुण भक्ति परम्परा में संत शिवनारायण का स्थान होने के कारण धाम की पूजा पद्धति थोड़ी अलग है। संध्या के समय गांव के अधिकतर लोग धाम पर उपस्थित होते हैं, धाम के प्रांगण में लकड़ी की चौकी पर गुरु अन्यास साहब को रखा जाता है इनके चारों ओर फल, फूल, मेवा, मिश्री, मनभोग,अंगवस्त्रम आदि रख कर दीप प्रज्ज्वलित किया जाता है। गांव के उपस्थित संतों द्वारा बड़ा सा घेरा बनाकर गुरुयास के चारों ओर बैठ जाते हैं।**

# क्र म श:

महंत जी गुरुन्यास पर पुष्प अर्पित करते हुए गाते हैं-

बन्दौ दुःखहरण गुरुनामा
अगम निगम के थाह न पावे, ना पावे बेद पुराना
शिवसनकादिक ब्रहम अनादिक, जपत रहे निज नामा
बन्दौ दुःखहरण गुरुनामा।

आगे कहते हैं-

पहले गुरु को गाइए जिन गुरु रचा जहाँन
पानी से गुरु पिण्ड रचे अलख पुरुष निर्बान !"

सभी संत दोनों हथेली को आगे बढ़ाकर शीश झुकाकर कहते हैं बंदगी साहब! ढोलक, शंख, मंजीरा, हरमोनियम यादि बजता है, व्यास जी द्वारा भजन गाया जाता है-

फुल एक फुलेला बलमु जी के देशवा
सतगुरु दिहले देखाई हो ।
से फूल निरखेला नयन सनेहिया,
मनमोरा रहेला लुभाई हो ।

इस प्रकार अनेक संतों द्वारा अलग-अलग भजन-सोहर आदि गाने के बाद आरती होती है।. आरती के बाद पूजा समाप्त होती है, प्रसाद में मनभोग वितरण होता है। अंत में कीर्तनिया समाज के लोग आसन छोड़ते समय कहते हैं –

"संत महातम उठत हैं जन कोई करे दुर्वास"

गांव के इसी कीर्तनिया समाज में एक व्यक्ति था फागू। कहते हैं फगुआ के दिन जन्म होने के कारण इसका नाम फागू पड़ा । बचपन से शिवनारायण साहब के धाम से जुड़े होने के कारण कुछ भक्ति-भाव आ गया था। बड़े होने पर रसिक समाज में रहने लगा था। दरअसल गांव में जहाँ विशुद्ध ज्ञान और भक्ति भरा वातावरण था वहीं दूसरी ओर रसिकों की भी परम्परा थी जो सांसारिक संसाधनों से आनंद की खोज में लगे रहते थे। कही भंग घोटना हुआ, कहीं ताड़ी उतारना हुआ,बचा समय देशी ठर्रे और जुए में बीत जाता था। इसी रसिक परम्परा ने फागू का संस्कार किया।

# क्र म श:

फागू ठिगने कद का सांवला आदमी था सिर पर घुंघराले बाल, चेहरे पर भरी-भरी मूंछे और मूछों पर ताव तथा उभरी हुई लाल मुंगिया आँखे जो भांग और ताड़ी में धुत रहती थीं । गांव के छोटे बच्चे इसे देख कर डर जाते थे। जो थोड़े बड़े थे इसे देखकर कहते थे- "फगुआ फगुनिया नाच क नचनिया" और कमर को आगे पीछे हिला कर भाग जाते थे। फागू बड़बड़ाते हुए चला जाता। गाँव की नवकी, पुरनकी, पतोहिया, बुढ़िया सभी इससे बचती थीं । अकिला बुआ कहतीं ऐसा मुंहफट आदमी नहीं देखा जो किसी को भी कुछ कह दे और बदले में दो चार गालियाँ सुन ले या दो-चार लोटा पानी इसके ऊपर फेंकने के बाद हंसते हुए चलता बने।

दैनिक जीवन में थोड़ी-बहुत खेती के अलावा फागू ताड़ी उतारने का काम करता था । ताड़ी के मौसम में इसकी गांठ मजबूत रहती थी। तड़बन्ना में रसिकों की खासा जमात लगी रहती थी। जब चढ़ जाती तब गाता था –

ताड़ी पीए जानि जइह तड़ीखनवा ए बालम
सुतले में दाबि देइ सइतनबा ए बालम
मुँहवा मीहे बिगि देब परनवा ए बालम"

सभी खखा कर हंसते थे। कभी-कभी रसिक समाज में दार्शनिक भाव उभरने लगता और फागू भावुक होकर कहता दुनिया माया का बाजार है और गाने लगता-

आइल बा गवनवा के हमरो संदेशवा,
जाए के बा हमके पियवा के देशवा

फागू अपने दैनिक जीवन से जो कुछ बचाता उसे बचा कर रखता और फागुन मास में खुल कर खर्च करता । फागुन मास में फागू दूर क्षेत्रों में जाता और नर्तक ढूंढ कर लाता। पन्द्रह दिन पहले से होली के दिन तक प्रत्येक संध्या पर गांव की चौपालों में तथा गांव के प्रतिष्ठित लोगों के दरवाजों पर फगुआ का नाच होता था। फगुआ के दिन सभी बड़े-बुजुर्ग, बच्चे-जवान शिवनारायण साहब के धाम पर सुबह के समय उपस्थित होते। पहले रंग और गुलाल धाम में चढ़ाते फिर एक दूसरे को रंग, अबीर, गुलाल लगाकर बंदगी करते । और फिर भजन, कीर्तन, फगुआ गाने का सिलसिला आरम्भ होता।

जब कीर्तनिया मंडली गांव में निकलती है गांव के हर घर के द्वार पर फगुआ गाया जाता और नाचते हुए रंग-अबीर लगाकर मंडली आगे बढ़ती जाती । चारों तरफ से रंग गुलाल की वर्षा होने लगती । होली पर बना पकवान आता, सभी खाते और भांग की शरबत पी कर नाचते । गांव के रसिकों के लिए होली खास होती थी । ये भांग, ताड़ी और देशी ठर्रे में डुबकी लगाते हुए एक-दूसरे के दरवाजे पर जाते, रास्ते में जो मिलता उसे भिगाते-भीगते मस्ती और आनंद भरे वातावरण में आगे बढ़ते ।

फागू मस्ती में गाता-

अरे हमसे लगवइबू की लाला से
तोरा अंगिया रंगाइब गुलाला से... हो हो हो

किसी भी दरवाजे से जाते समय कीर्तनिया समाज के लोग आशीर्वाद देते और 'सदा आनंद रहे एहि द्वारे मोहन खेले होरी" कहते हुए दूसरे दरवाजे चले जाते। होली के त्यौहार में गांव से बाहर रहने वाले लोग भी आ जाते थे । इन आगंतुकों में एक ऐसा चेहरा था जिसकी तलाश फागू को वर्षों से रहती थी। होली ही ऐसा पर्व था जब फागू अपनी पुराणी याद को ताजा कर पाता था । आज के दिन वह खुल कर जीता। जैसे रंग का भंग से मिलन होता है, बैरी का मीत से मिलन होता है वैसे ही फागू का अपनी यादों से मिलन होता। जिन यादों के सहारे जीवन बीत जाया करते, उन यादों की होली में पूर्णिमा होती थी । चकोर पंक्षी की भांति चाँद को निहारते फागू का जीवन बीत जाता था । इस प्रकार रंगों, रसों और रागों के बीच मेरा बचपन भी बीत गया । इसी बीच शिक्षा के लिए गाँव छोड़ इलाहाबाद जाना पड़ा और लम्बे प्रवास के बाद एक बार गाँव आना हुआ ।

लगभग आठ वर्ष बाद किसी होली के पर्व पर मैं गाँव में था देख रहा था कि होली पर कुछ बच्चे डी.जे. बजाकर नाच रहे थे, “रंग बरसे भीगे चुनर वाली रंग बरसे, इक्का-दुक्का लोग सड़कों पर आ जा रहे थे, लोग इतने स्वार्थी बन गये कि गाँव में घुमने की परम्परा टूट सी गयी थी। मेरे मन में बार-बार फागू का ख़याल आ रहा था कि फागू जैसे रसिया समाज के लोग कहाँ हैं ?

पूछने पर लोगों ने बताया कि चार बरस पहले ऐसे ही धूम-धाम से फगुआ मनाया जा रहा था। फागू ने अबकी बार खूब भांग पी थी, उसकी जुबाँ पर एक नाम बार-बार आ रहा था। वह मण्डली के साथ खूब मस्ती में झूम रहा था पर उसकी आँखें हमेशा की तरह उसी आगंतुक के चेहरे के तलाश में थीं।

दरअसल वह बताना चाहता था कि तेरे याद में मैंने तमाम उम्र यूँ ही गुजार दिए । होली के दिन सुबह से ही घूमते-घूमते रात के दस बज गये । फगुआ की मंडली समाप्त हो गयी थी। सभी लोग अपने-अपने घरों को चले गए थे ।

रात्रि के घुप्प अंधेरे को टटोलते हुए फागू घर की ओर जा रहा था, उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। देखता है अचानक आंखों के सामने उजाला हो गया है, पिरितिया सामने खड़ी है । फागू तेज कदमों से उसकी ओर बढ़ता है, उससे मिलकर सारी बातें कह लेना चाहता है, बड़बड़ाता है, ‘रब्बे इश्क में बेइंतहा कैसे कैसे, हमने बहा दिया इश्के दरिया में कतरा कतरा ऐसे” । अंधेरे में फागू का पैर फिसल जाता है। धाम के पोखरे में डूबकर फागू की मृत्यु हो जाती है। फागू के दुखद अंत के साथ ही फगुआ की लोक परम्परा का भी अंत हो जाता है।